हमारी खुराक
और
आबादी की समस्या

लेखक
श्री ओंप्रकाश

भूमिका-लेखक
डॉक्टर एल० सी० जैन
एम० ए० एल-एल० बी०, पी० एच० डी०,
डी एस सी. इकानॉमिक्स (लन्दन)

राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड
दिल्ली।

प्रथम बार १६४७
मूल्य दो रुपये

मुद्रक
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस
दिल्ली. ४२-४७।

भूमिका

आज हमारे देश में भोजन की समस्या ने जो जटिल रूप धारण कर लिया है वह किसी से छिपा नहीं है। जो देश अपनी जनता को समुचित और पर्याप्त मात्रा में भोजन भी नहीं दे सकता उसका आर्थिक प्रबन्ध निकम्मा नहीं तो क्या है? जनता के प्रतिनिधियों का सर्वप्रथम उत्तरदायित्व देश के आर्थिक प्रबन्ध को विशेषज्ञों की सहायता से शीघ्र से-शीघ्र सुधारना है। भाग्य से भारतवर्ष में भूमि तथा कृषि के अन्य साधनों को कमी नहीं है, कमी है तो इनके जुटाने और समुचित उपयोग की। जापान से लड़ाई के पश्चात् आज भी हम चाहे तो बहुत-कुछ सीख सकते हैं। भोजन की समस्या का हल जिस प्रकार जापानी कर रहे हैं उसे देखकर हम उन्हें सराहे बिना नहीं रह सकते। जमीन के चप्पे-चप्पे का सदुपयोग करना वे जानते हैं। भारतवर्ष में जीवन की अपेक्षा कृषि-योग्य भूमि कहीं अधिक मात्रा में मौजूद है, किन्तु जहां जापान में अनाज, फल व साग-सब्जी की पैदावार बढ़ाई जा रही है वहां हमारे यहा खाने-पीने की सभी चीजों की पैदावार पिछले दो-चार वर्षों से घट रही है, जबकि जन-संख्या बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही जापान में ऐसे अनाज की पैदावार पर विशेष ध्यान है जिससे भोजन अधिक से अधिक मात्रा में मिल सके और वहां के रसायन और कृषि विद्या के विशेषज्ञ बराबर इसी धुन में लगे रहते हैं कि किस प्रकार भोजन की वस्तुओं की उत्पत्ति बढ़ायें। हमारे देश में न तो पर्याप्त अनुसन्धान ही है और न उसकी उपयोगिता का समुचित प्रबन्ध।

इस समय हमारे देश की बागडोर हमारी जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में है। सबसे प्रथम इस बात की आवश्यकता है कि हमारी समस्याओं का निष्पक्ष भाव से विवेचन हो। और आम जनताको उसकी

मुख्य-मुख्य बातें समझाई जायं ताकि समझदार जनता राज्य-कर्मचारियों से अपनी भली प्रकार सेवा करा सके। मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि कुछ लेखक अब आर्थिक विषयों पर हिन्दी में लिखने लग पड़े हैं और इस दृष्टि से 'हमारी खुराक और आबादी की समस्या' नामक पुस्तक का मैं हृदय से स्वागत करता हूं। पुस्तक की सामग्री जुटाने में लेखक ने निस्सन्देह बहुत परिश्रम किया है। मुझे आशा है कि इसे पढ़कर पाठकगण लाभ उठायंगे। मुझे यह भी आशा है कि पुस्तक के दूसरे संस्करण की भाषा अधिक सरल और शुद्ध होगी।

दिल्ली

लक्ष्मीचन्द्र जैन

विषय-सूची

पूर्वार्द्ध—आबादी

१.	सिद्धान्त	१
२.	जन-संख्या	७
३.	जन्म और मौत	१६
४.	हमारा आर्थिक इन्तजाम	२६
५	अनाज की तुलनात्मक उपज	४१
६.	हिन्दुस्तान की अधिक जन-संख्या	५२
७.	समस्या और उसका समाधान (क)	५८
८	समस्या और उसका समाधान (ख)	६८

उत्तरार्द्ध—खुराक

१.	उष्णता	७१
२.	आहार-तत्त्व	७२
३.	खाद्य-पेय	८२
४	आहार-मूल्य	८६
५.	खुराक की मिकदार	१०६
६.	भारत में खाद्य-संकट	११५
७.	विश्व-व्यापी संकट	१२४

आभार-प्रकाशन

ह्वाइट पेपर आन फूड	ब्रिटिश लोक-सभा में खाद्य-स्थिति पर बहस मे पहले दिया गया सरकारी बयान।	
इण्डस्ट्रियलाइज़ेशन एंड फॉरेन ट्रेड :	लीग आफ नेशन्स	१९४५
वार-टाइम राशनिंग एंड कंसम्पशन	,, ,,	१९४२
फूड राशनिंग एंड सप्लाई १९४३—४४	,, ,,	१९४४
प्रॉब्लम ऑफ इण्डस्ट्री इन दी ईस्ट,	इण्टरनेशनल लेबर आफिस	१९३८
ए फूड प्लैन फॉर इण्डिया	रायल इंस्टिट्यूट ऑफ इण्टरनेशनल एफेयर्स	१९४५
हैल्थ बुलेटिन नं० २३	गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया	१९४४
हैल्थ बुलेटिन नं० ३०	,, ,,	१९४४
फूड	सर राबर्ट मैक्करिसन	
टीमिंग मिलियन्स	प्रोफेसर ज्ञानचन्द	
प्रोफेसर बृजनारायण के भिन्न भिन्न प्रकाशन		
यौर फूड	एम आर. मसानी	

'इकॉनामिस्ट' और 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन' (लण्दन के साप्ताहिक पत्र) तथा 'टाइम' 'नेशन' और (अमरीका के साप्ताहिक पत्र) के पिछले कुछ वर्षों के अंक जर्नल ऑफ दी इण्डियन मेडिकल ऐसोसियेशन।

तथा अन्य जिन लेखकों अथवा सामयिक पत्रों से इस निबन्ध मे उद्धरण प्रस्तुत किये गए हैं, अथवा तालिकाएं व मानचित्र उतारे गए हैं, लेखक उन सबके प्रति आभारी है।

पूर्वार्द्ध

आबादी

: १ :

सिद्धांत

आबादी के लिहाज से हिन्दुस्तान चीन के सिवा दुनिया के सब देशों से आगे है और अनाज की पैदावार के हिसाब से सबसे पीछे। दूसरी लड़ाई के दौरान मे और उसके बाद कई वजहो से हमारे देश की खुराक और आबादी की समस्या की ओर देश के हितैषियों का ध्यान खासकर खिंच गया है। इन पिछले वर्षों देश को भूख और अनाज की तंगी के दिन देखने पड़े और अब भी संकट को टल गया नहीं कहा जा सकता। हमारे देश का आर्थिक इन्तजाम कुछ ऐसा ढीला और आबादी के सवाल पर कुछ ऐसी बेफिक्री है कि अकाल या अनाज की कमी कोई नई बात नहीं रह गई। खुराक और आबादी मे गहरा सम्बन्ध है—परन्तु इस सम्बन्ध पर हमारे देश मे अभी हाल मे ही विचार होने लगा है। इन मस्लो पर प्रभावशाली विचार और संगठित योजना शासन द्वारा ही सम्पादनीय है। लेकिन किसी विदेशी, गैर-जिम्मेवार सरकार से इसमे दिलचस्पी की उम्मीद नहीं की जा सकती। यह हिन्दुस्तान का सौभाग्य है कि ऐसे आड़े समय मे हकूमत की बागडोर जनता के प्रतिनिधियो के हाथ में आगई है और खेती-बारी और खाद्य का महकमा देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद, जैसे कर्मनिष्ठ व्यवस्थापक के हाथों में है।

जन-संख्या और खुराक का सवाल दुनिया के लिए नया नहीं है। अब से करीब डेढ़ सौ वर्ष पहले इस विषय की चर्चा युरोप में शुरू

हुई। १७९८ ई० में टामस राबर्ट माल्थ्यूस नामक विचारक ने इस पर पहले-पहल रोशनी डाली थी। उन्होंने जन-संख्या के सिद्धान्त पर वैज्ञानिक ढंग पर चर्चा चलाने के लिए एक सुविख्यात पुस्तक लिखी। जन-संख्या और खुराक का जिस हद तक सम्बन्ध है उसके बारेमें सबसे पहले इन्हीं ने विचार किया।

जिन दिनों माल्थ्यूस इस समस्या के सिद्धान्त पर अपने विचार जाहिर कर रहे थे उन्हीं दिनों युरोपमें नेपोलियन ने सारी दुनिया जीत लेने के लिए लडाई छेड दी। यह वह जमाना था जब इंग्लैण्ड खेती-बारीका सहारा छोड़ धन्धे-रोजगार की ओर बढ़ने लगा था। ऐसी हालत के प्रभावरूप ही माल्थ्यूस के खयालात निराशावादी और संकीर्ण थे। उन्नीसवीं सदी की शुरूआत में इंग्लैण्ड के आर्थिक विचारो पर माल्थ्यूस के विचारों ने खासा असर डाला। उन दिनों इंग्लैण्ड की जन-संख्या बडी तेजी से बढ रही थी। १८०१ ई० में जहां उस देश में सिर्फ ९० लाख औरत-मर्द और बच्चे थे, वहां १९०१ई० मे यह तादाद सवा तीन करोड हो गयीं और जहां १७७१–८० ई० में गेहूं ३४ शिलिंग ७ पेंस का एक क्वार्टर यानी ७ मन आता था वहां १८११–२० ई० में उतने ही वजन गेहूं का दाम ८७ शिलिंग ६ पेंस हो गया।

ज्यों-ज्यों उस देश में कल-कारखानों और रोजगार-धन्धो की बढ़ती होती गई, भाप से चलनेवाली रेलगाडियां तथा इंजनों से जहाज चलने लगे, इंग्लैण्ड की खुशहाली में तरक्की होती गई। इससे माल्थ्यूस के विचारों का असर कम होता गया—और जनसंख्या के सवाल पर ज्यादा आशाप्रद और उदार सिद्धांत जाहिर किये जाने लगे।

माल्थ्यूस के सिद्धान्त का निचोड़ यह था कि जन-संख्या का झुकाव खुराक की प्राप्य मात्रा से ज्यादा तेजी से बढ़ने की ओर रहता है। नतीजा यह होता है कि जनसंख्या हमेशा ज्यादा ही पाई जाती है।

उन्होंने लिखा—“जबकि जनसंख्या पर कोई रोक-टोक नहीं होती तो वह रेखागणित के अनुपात से बढ़ती है। खुराक की पैदावार में

गणितके अनुपात से तरक्की होती है।" उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि "जनसंख्या को हमेशा मिल सकने वाली मात्रा तक ही रोके रखना चाहिए।"

जन-संख्या की रोक-थाम के लिए मालथ्यूस ने सुझाया कि दो ही उपाय है जिनमें पहला तो कुदरती होता है—यानी प्लेग,हैजा,महामारी और लड़ाई आदि। दूसरा उपाय आदमी के बस में है—यानी सन्तान की पैदाइश रोकने के लिए अपने ऊपर काबू रखना और स्त्री से सहवास न करना।

इस समस्या पर एक दूसरे दार्शनिक कैनन ने कहा है कि "आर्थिक विचारों मे आमतौर पर काम आनेवाली युक्ति और तर्क" के स्थान पर गणित का व्यवहार ठीक और संगत नहीं। इसमें शक नहीं कि जन-संख्या और खुराक की पैदावार की वृद्धि रेखागणित और अङ्कगणित के अनुपातकी कड़ाईपर न कभी कायम रह सकी है और न रहेगी। फिर भी, एक प्रवृत्ति के रूप मे माल्थ्यूस के सिद्धान्त जरूर ठीक तथा विचारणीय हैं।

मालथ्यूस ने यह भी भूल की कि जहां एक ओर वह जन-संख्या पर रोक-थाम रखने की आवश्यकता पर जोर देते रहे वहां उन्होंने खाद्योत्पत्ति बढ़ाने के लिए ज्यादा कोशिशों की ओर इशारा नहीं किया। उन्होंने प्राप्य खुराक को स्थिर प्राकृतिक व्यवस्था के रूप मे मान लिया और इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि किस हद तक इसमें भी मानवीय यत्नों से उन्नति सम्भव है। इसके बाद के यूरोप के सारे आर्थिक इतिहास ने मालथ्यूस के विचारो को झूठा साबित किया है और वहां आज के 'समृद्धि-युग' मे उनके विचारों को 'पुराने जमाने के विचार' कहा जाने लगा है।

इस दृष्टिकोण से मालथ्यूस के सिद्धान्त को जड़ कहा जा सकता है।

मालथ्यूस के विचारों की महत्ता इस बात में है कि सबसे पहले उन्होंने जन-संख्या को समझ-बूझकर काबू मे रखनेकी ओर ध्यान आकर्षित किया। उसका विचार था कि रोक-थाम के साधनों का प्रयोग करके

अपनी संख्या को घटाये रखकर हम मनुष्य-मात्र के दुःखों में कमी कर सकते हैं। वह इस बात को न जानते थे कि जन-संख्या और उसके पास जो कुदरती साधन होते हैं वह एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इस विचार-विनिमय में भूमि की उपज क्रमशः कम होते रहने का सत्य(लॉ आफ़ डिमिनिशिंगरिटर्न)जे०ए० मिल ने ही पहले व्यक्त किया, यद्यपि वह भी यही मानते थे कि उद्योग-धन्धों की ज्यादा-से-ज्यादा उपज हमेशा के लिए कायम और अचल हुआ करती है।

माल्थ्यूस के सिद्धान्त पश्चिम में उत्पत्ति के साधनों के उन्नत और विकसित हो जानेपर फिजूल से होगये हैं। लीग आफ नेशन्स की १६३१-३२ की रिपोर्ट के अनुसार जब कि १६१३ और १६२५ में संसार भर की जनसंख्या ५ फीसदी बढ़ी तो खुराक के सामान में इन्हीं दिनों १० फीसदी की वृद्धि पाई गई। १६२५ और १६२६ के बीच संसार की जनसंख्या और खुराक के सामान में क्रमशः ४ और १० फीसदी वृद्धि हुई है। यह स्पष्ट है कि भोजन चाहनेवालों की संख्या के बढने के साथ खाने-पीने की वस्तुओं में कमी नहीं होती गई। उपज खपत से पीछे नहीं रही। जगत् के उद्योग-धन्धोंवाले देशों मे तो हालत बिलकुल ही पलट गई है। वहां तो यह सवाल उठने लगा है कि जरूरत से ज्यादा उत्पन्न हुए अनाज का क्या किया जाय? लोगों की मेहनत के मूल्य को उचित तल पर रखने के लिए दरों और भावो को किस प्रकार ऊंचा रखा जाय? आबादी को किस प्रकार बढ़ाया जाय? सन्तान पैदा होने और जन्म-मृत्यु के अनुपात में बहुत कमी होजाने से जातीय विनाश की जो सम्भावना सामने आ रही है उससे जाति को किस प्रकार बचाया जाय? यहां तो माल्थ्यूस की विचारधारा एकदम व्यर्थ दीख पड़ती है। केवल भारत और चीन-जैसे पूर्व के देशों में ही अभी तक माल्थ्यूस के विचारों की पूरी जीत हुई है। ऐसे ही देशों में जनसंख्या और खुराक की प्राप्य मात्रा में बेमेल और असमता कायम है।

सिद्धांत

कैनन का 'ज्यादा से ज्यादा जनसंख्या' का सिद्धान्त माल्थ्यूस के विचारों से अधिक सजीव और गतिमय था, क्योंकि इसमें यह मान लिया गया था कि मानवीय कोशिशों से खुराक की पैदावार में घट-बढ़ हो सकती है। उनका कहना है कि "किसी भी एक खास समय मे, धरती की एक विशिष्ट सीमा पर, जो जनसंख्या उस समय खेती की अधिक-से-अधिक सम्भव उपज पर जीवित रह सकती है, वह निश्चित होती है।" इसी जनसंख्या को उन्होंने 'ज्यादा से ज्यादा जनसंख्या' कहा है। कैनन के अनुसार यही सबसे अच्छी जनसंख्या है।

शास्त्रीय सिद्धान्तों की दृष्टि से देखा जाय तो कैनन का 'ज्यादा से ज्यादा जनसंख्या' का सिद्धान्त माल्थ्यूस के विचारों से अधिक पक्का और परिपूर्ण जान पड़ता है। किंतु विचारों के इस महल की नीव भी दृढ़ नही है। इस अधिक-से-अधिक जनसंख्या का अनुमान अथवा निश्चय किन उपायो से हो ? उत्पत्ति के साधनो में प्रतिदिन उन्नति हो रही है। उपज मे सदा ही घट-बढ़ होती रहती है। ज्यादा से 'ज्यादा जनसंख्या' के सिद्धान्त के अनुसार उपज को तभी अधिक-से-अधिक माना जा सकता है जबकि प्रति मनुष्य की आमदनी ऊंची से ऊंची समझी जा सके। इसमे "धन को बांटने की किसी खास योजना को पहले ही मान लिया गया है" (ज्ञानचन्द)। अधिक-से-अधिक जनसंख्या का कोई विवेचनात्मक प्रमाण नहीं है, किसी ऐसे केन्द्र-बिन्दु का अनुमान नहीं लगाया जा सकता जहां कि हर इन्सान की आमदनी को अधिक-से-अधिक कहा जा सके। बांटने की कोई पूरी योजना भी सामने नहीं है। फिर भी, यह सिद्धान्त उन कोशिशों की ओर इशारा करता है जो कि जनसख्या और उसके लिए प्राप्य खाद्य की मात्रा में सन्तुलन रखने के लिए हमेशा लगातार रूप में करनी पड़ती हैं।

जनसंख्या के प्रश्न के दो साफ भेद हैं। यदि बिना किसी बाधा और रोक-थाम के मनुष्य अपनी सन्तान पैदा करने की शक्ति का

प्रयोग करता रहे तो जनसंख्या की बढ़ती की कोई हद नहीं हो सकती। परन्तु जीवित रहने के लिए मनुष्य को खुराक और अनाज की जरूरत होती है। इस खुराक और अनाज को धरती से उपजाना है। भूमि की दो विशेषताएं है–(१)इसकी मात्रा सदा के लिए कायम है; इसमें कमी-बढ़ती नहीं हो सकती और (२) भूमिकी उपज 'क्रमशः कमी के कानून" (लॉ आफ डिमिनिशिंग रिटर्न) से बाध्य है। मनुष्य-द्वारा जनसंख्या की वृद्धि में अनियन्त्रण और भूमि की उपज में कंजूसी ही जनसंख्या की समस्या के कारण हैं।

: २ :

जन-संख्या

पच्छिमी देशों से हिन्दुस्तान की जनसंख्या का सवाल जुदा है। हमारा देश बहुत बड़ा है। संसार-भर की जनसंख्या का पांचवा भाग इसमें रहता है। यहां के लोगों को अनाज की कमी या अभाव का बोझ दबाये-सा रहता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे जनसंख्या और खाद्य की प्राप्त मात्रा में यहां जो लगातार होड़ रहती है उनमें मनुष्य हारता ही रहेगा। भारत की आम जनता का रहन-सहन नीचे-से-नीचे दर्जे का है। हमारा यह अभागा देश सभ्य जगत् में पिछड़ा हुआ माना जाता है। अन्धविश्वास, अज्ञान, धर्मान्धता यहां लोगों पर हावी है। प्रकृति और मनुष्य—दोनों के अत्याचारों से यहां के लोगों के तन-मन बेकार से हो गये हैं। आज समस्या सिर्फ जनसंख्या की नहीं, हमारे चरित्र और मानसिक स्थिति की भी है। "एक हीन-क्षीण जनता को नये सिरे से ढालने का" सवाल हमारे सामने पेश है।

मुकाबला करने की दृष्टि से देखा जाय तो भारत में जनसख्या की बढ़ती संसार के दूसरे देशों से धीमी ही हुई है। १८७० और १९३०ई० के बीच कुछ देशो की जनसख्या की वृद्धि नीचे लिखे अनुपात में हुई—

अमरीका के संयुक्त राष्ट्र	१२५ फीसदी
रूस	११९ ,,
जापान	११३ ,,

इंग्लैंड और वेल्स	७७ फीसदी
यूरोप (रूस के अतिरिक्त)	५६ ,,
हिन्दुस्तान	३०·७ ,,

हिन्दुस्तान के मुकाबले में जनसंख्या में कम वृद्धि करनेवाला सिर्फ एक ही देश है—फ्रांस। ऊपर बताये समय में फ्रांस में जन-संख्या १४ फी सदी ही बढ़ी। सन्तान पैदा करने में फ्रांस ने जो रोक-थाम की, उसका नतीजा यह हुआ कि फ्रांस को इस दूसरे महायुद्ध (१६४० ई०) में हार का दिन देखना पड़ा। फ्रांस में ही नहीं; समस्त यूरोप में अर्थशास्त्रियों के सामने जनसंख्या मे काफी वृद्धि न होने का सवाल पेश है। वहां तो जनसंख्या बढ़ाने का अनुरोध शासन की ओर से होता है। हिन्दुस्तान की हालत उलटी है। पच्छिम की तुलना में बहुत कम वृद्धि होने पर भी यहां सवाल जनसंख्या के अधिक होने का है। कितने ही विद्वानों का विचार है कि देश की भलाई के लिए हमें अपनी जनसंख्या को जरूर घटा देना चाहिए।

१६४१ ई० की मर्दुमशुमारी के अनुसार भारत की जनसंख्या ३८,८६,६८,६५५ थी। इस संख्या में १८८१ ई० से इस तरह बढ़ोतरी हुई है—

सन्	संख्या (००० और जोड़िए)	गत दश वर्षों में फीसदी बढ़ी
१८८१	२५,०१,२५	...
१८९१	२७,६५,४८	६.०
१६०१	२८,३८,२७	१.४
१६११	३०,२६,९५	६.८
१६२१	३०,५६,७४	०.६
१६३१	३३,८८,००	१०.६
१६४१	३८,८६,६८	१५.०

जाहिर है कि यह वृद्धि एक समान नहीं हुई। हर दसवें वर्ष कभी कम और कभी अधिक वृद्धि होती रही है। १८६१और १६०१ई०

के बीच भारत में एक बड़ा अकाल पड़ा। १६११ और १६२१ई० में इन्फ्लुएंजा का छूत का रोग इतना फैला कि उससे सवा करोड़ मौतें हुईं। यही महान् आपत्तियां इन वर्षों के आंकड़ो में प्रत्यक्ष हुई है। हमारे देश की जनसंख्या के सवाल की यही लाजिमी विपत्ति है। काफी अनाज न होने पर या उसे उपजा न सकने पर जहां मनुष्य को जान-बूझकर अपनी संख्या को घटाये रखने की कोशिश करनी चाहिए थी, वहां कुदरत को अपने उपाय काम में लाने पड़ते हैं। अनाज की कमी होती है तो आदमी मरते हैं, काफी खुराक न पाकर लोगों में बीमारियों-महामारियों का सामना करने की ताकत नहीं रह जाती। इस तरह घातक रोगो का शिकार होकर वह मक्खियों की तरह बड़ी संख्या में मौत के मुंह में चले जाते हैं। कुदरत के उपाय हमेशा क्रूर होते है। इसी से हमें अपने देश में समय-समय पर कुदरती आफतों को सहना पड़ता है। इस तरह कुदरत लाखों-करोडों लोगों का थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से गला घोटती रहती है।

१६३१ ई० में डा० हट्टन मर्दुमशुमारी के कमिश्नर थे। उन्होंने कहा कि १६२१ और १६३१ ई० में जनसंख्या की १०.६ फीसदी वृद्धि 'डर का कारण' थी। हर साल १ फीसदी के हिसाब से यह वृद्धि हुई। १६३१ और १६४१ ई० में वृद्धि का यही अनुपात १५ फीसदी यानी प्रतिवर्ष १.२५ हो गया। डर का कारण अपनी संख्या के अनुसार अपनी आर्थिक व्यवस्था को फिर से संगठित न करने से पैदा होता है। खुराक और अनाज की प्राप्य मात्रा का बिना कुछ भी विचार किये हम अपनी संख्या को बढ़ाते जा रहे है।

खेती पर आधार

हमारे अनाज जुटाने के साधन १६४१ई० की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस तरह थे:—

खेती	६५.६०
खान की पैदावार	०.२४

कल-कारखाने	१०.३८
आमदरफ्त	१.६५
व्यापार	५.८३
राजकाज	९.८६
फुटकर	१३.७४

इन आंकड़ों से भारत की आर्थिक व्यवस्था में खेती की प्रधानता और महत्ता का अंदाजा लगाया जा सकता है। उद्योग-धन्धों मे लगी हुई जनता का अनुपात १०.३८ रहा है, परन्तु संगठित उद्योग-धन्धों में यह संख्या सिर्फ १.५ है। यह हालत बहुत नाउम्मीद कर देनेवाली है। ऐसे देश की आर्थिक स्थति जो सिर्फ खेती के ही सहारे हो, सदा डावांडोल रहा करती है। और फिर हिन्दुस्तान में खेती तो खुद जुए के दाँव की तरह बरसात और कुदरत की दया पर निर्भर है। खेती के आधार पर रहनेवाले लोगों की संख्या में समय के साथ बहुत अदल-बदल नहीं हुआ है, यह नीचे के आंकड़ों से स्पष्ट है—

१८९१	ई० में खेती पर आश्रित जनता का अनुपात		६१	फीसदी
१९०१	,,	,,	६६	,,
१९२१	,,	,,	७२	
१९३१	,,	,,	६७	,,
१९४१	,,	,,	६५.९	,,

१९३१ ई० इस संख्या के ७२ से ६७ फीसदी हो जाने के बारे में डा० हट्टन ने कहा कि यह संख्या ठीक नहीं है; भ्रम में डालनेवाली है। उस साल जो स्त्रियाँ सिर्फ खेती के सहारे थीं उन्होंने अपने आपको घरों की नौकर-चाकर लिखाया। इस तरह इस देश की जनता का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा खेती पर ही गुजर-बसर करता है, यह साफ जाहिर हो जाता है।

इस सचाई का इस बात से भी प्रमाण मिल जाता है कि १९४१ ई० में गांवों में रहनेवाली जतना का अनुपात शहर के लोगों से ८७:१३

का था। गाँव की जनता की संख्या में बहुत धीमी गति से कमी हुई है जो कि नीचे लिखे आँकड़ों से मालूम होता है:—

१८६१	६०.५ : ६.५
१६०१	६०.१ : ६.६
१६११	६०.६ : ६.४
१६२१	८६.८ : १०.२
१६३१	८६ : ११
१६४१	८७ : १३

शहरों में रहनेवालों की संख्या इंग्लैण्ड और वेल्स मे ८० फीसदी, अमरीका के संयुक्त राष्ट्र में ५६.२ फीसदी और फ्रांस मे ४६ फीसदी है। खेती और उद्योग-धन्धों के अनुपात की असमानता हमारे देश के गाँवों और शहरों मे रहनेवालों की संख्याओं मे भी झलकती है। यह दोनों ही बाते यह साबित करती हैं कि भारत की जनता का आधार खास कर खेती पर ही है।

सामाजिक हीनता

और देशों के मुकाबले में हिन्दुस्तान आर्थिक दृष्टि से हीन है और सामाजिक रूप में पिछड़ा हुआ। ये दोनों बातें साथ-साथ ही चलती हैं। १६४१ ई० मे सिर्फ १२ ६ फीसदी लोग ही पढ़-लिख सकते थे। १६३१ ई.में यह संख्या ८.०फीसदी और १६२१ई में ७.१ प्रतिशत थी। १६४१ ई० मे इस संख्या में जो बढ़ती दिखाई पडती है, वह भुलावे में डालनेवाली है, क्योंकि पढे-लिखे लोगो में १६३१ ई. में उन लोगों को सम्मिलित किया गया था जो चिट्ठी पढ़ सकते थे और उसका उत्तर भी लिख सकते थे। १६४१ में पढ़े-लिखे लोगो मे सिर्फ पत्र पढ सकने पर ही उनकी गिनती पढे-लिखे लोगो मे कर ली गई।

हमारे देश की इन संख्याओं के मुकाबले में अमरीका के संयुक्त राष्ट्र में पढ़े-लिखे ६५.६७ फीसदी (१६३०), रूस में ६०.०

फीसदी (१९३३), तुर्की में ४४.९ फीसदी (१९३४) और इटली में ७१.२ फीसदी (१९२१) हैं।

अनपढ़ों की इतनी बडी संख्या होने से स्पष्ट है कि हिंदुस्तान की आम जनता जनसंख्या की समस्या को समझ ही नहीं सकती और न वह आज की दुनिया की उन्नति में हिस्सा ले सकती है। अपढ़ होने से पुरानी लकीर और रंग-ढंग पर डटे रहने का झुकाव होता है। खेती के तरीकों में नये सुधार करने कठिन हो जाते हैं और पिता-पितामहों की परिपाटी छोड नई राहों पर चलना उनके लिए असम्भव हो जाता है।

औरत और मर्द का भेद

जनसंख्या के औरत मर्द के भेदपर विचार कर लेना भी जरूरी है, क्योंकि इस भेदका जनसंख्या की वृद्धि पर गहरा असर पड़ता है। भारत में स्त्री-पुरुष-संख्या में असमानता है। यहां पुरुष अधिक संख्या में हैं। १९३१ ई० में जनसंख्या का ५१'४ फीसदी मर्द और ४८'६ फीसदी औरतें थीं। १८८१ ई० से स्त्रियों की कमी लगातार ही स्पष्ट रही है और इस समय पुरुषों की संख्या औरतों से ज्यादा बढ़ती रही है। नीचे लिखे आंकड़ों से यह प्रत्यक्ष होगाः—

सन्	स्त्रियों की कमी	१००० पुरुषों के पीछे स्त्रियो की संख्या
१९०१	५५ लाख	९६३
१९११	७५ लाख	९५४
१९२१	९० लाख	९४५
१९३१	१ करोड़ १० लाख	९४०

सिर्फ मद्रास प्रान्त में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है। पंजाब में १००० पुरुषों के पीछे ८३१ स्त्रियां हैं जब कि १८८१ ई० में यही संख्या ८४० थी।

वेस्टरमार्क, हीप और अन्य विचारकों का कथन है कि स्त्रियों की

संख्या में कमी का कारण हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था या जातिभेद है, क्योंकि छोटे दायरे के अन्दर विवाह का नतीजा ज्यादा पुरुष-सन्तान होता है। इस विचार की सचाई की साक्षी नहीं दी जा सकती। स्त्रियों की संख्या में कमी का कारण कुछ हद तक देश में प्रचलित छोटी उम्र की शादियां भी हो सकती है, क्योंकि शरीर के परिपक्व होने से पूर्व ही स्त्रियों को गर्भ रह जाता है और अधिक संख्या में जच्चा की अवस्था मे ही उनका देहान्त हो जाता है। सन्तान पैदा कर सकने के समय स्त्रियों की मौतें ज्यादा होती हैं। पैदा होने के समय भी हिन्दुस्तान मे लड़कियो की अपेक्षा लड़कों की संख्या ज्यादा होती है। इसका अनुपात १०८:१०० का है।

स्त्रियों की इस कमी का प्रभाव हमारे चालचलन पर पड़ता है। छोटी उम्र में ही विवाह कर देने का रिवाज भी इसी कमी के कारण है। इसका फल यह होता है कि पति और पत्नी की आयु में अधिक फर्क पाया जाता है। इसी कमी के कारण वेश्यागमन जैसी सामाजिक बुराइयां फैलती हैं। हिन्दुस्तान में यह कमी गांवों से ज्यादा नगरों में पाई जाती है। बम्बई और कलकत्ता जैसे नगरों में तो यह बहुत ही अधिक है जहां हर १००० पुरुषों के पीछे १९३१ ई० में स्त्रियो की संख्या क्रमशः ५५४ और ४८९ थी।

भारत में विवाह एक बहुत जरूरी और धार्मिक संस्कार के रूप में माना जाता है। १९३१ ई०की मर्दुमशुमारी के समय तो "विवाह-योग्य उम्र का हर व्यक्ति विवाह कर चुका था।" उस वर्ष १५ से ४० वर्ष की स्त्रियों में से केवल ५ फीसदी अविवाहिता थीं। हिसाब लगाया गया है कि पंजाब में विवाह की आयु औसतन स्त्रियों के लिए १२·३८ वर्ष की और पुरुषों के लिए १७·९८ वर्ष की है। सर जान मेगॉ का कहना है कि हिन्दुस्तान में औरत-मर्द का सम्भोग औसतन १४ और १८ वर्ष की आयु में हो जाता है, जबकि यही संख्या इंग्लैण्ड में २६ और २७

वर्ष की है। यहां १५वर्ष की आयु तक १०००के पीछे विवाहितों की संख्या इस प्रकार रही है:—

	१८८१ ई.	१९०१ ई.	१९२१ ई.	१९३१ ई.
पुरुष	६३	५९	५४	७७
स्त्री	१८७	१६२	१५६	१८१

१९३१ ई. में यह अचानक वृद्धि शारदा एक्ट के स्वीकृत हो जाने से पूर्व ही विवाह कर लेने के चाव से हुई।

ऊपर-लिखे आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में विवाह का आम रिवाज है और यहां छोटी आयु में विवाह हो जाते हैं। विवाह के इस व्यापक रिवाज से जनसंख्या के अनुपात पर सीधा असर पड़ता है और छोटी आयु में विवाह का नतीजा होता है जनता की नीचे दर्जे की जीवनी शक्ति, पैदा होने के समय ही जच्चा-बच्चा की मृत्यु, सन्तान पैदा करने की शक्ति की कमी और छोटी आयु की विधवाओं की बढ़ी हुई तादाद। हिन्दुस्तान में जहां स्त्रियों की पहले ही कमी है, इस विधवापन के कारण सन्तान पैदा करने के काल में १४ फीसदी स्त्रियों को सामाजिक बन्ध्यापन सहना पड़ता है। १९३१ ई० में १४ से ४५ वर्ष की विधवाओं की संख्या १ करोड़ ६ लाख ९० हजार थी। इन अभागी स्त्रियों में ७८ फीसदी हिन्दू थीं, क्योंकि इनमें विधवा-विवाह अभी आम तौर पर जारी नहीं हुआ है।

इस प्रकार छोटी उम्र में ही व्यापक रूप में विवाह होनेसे भारत में ऐसे कमजोर लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है जो अन्न पैदा करने तथा अन्य धन्धों में काफी ताकत नहीं लगा सकते। जन्म से ही माता-पिता से कमजोरी पाकर और बड़े हो कर भी ठीक मात्रा में अन्न न मिलने से वह इस योग्य नहीं हो पाते कि जीवन को कायम रखने के लिए जरूरी अनाज आदि पैदा कर सकें।

उम्र के अनुसार जनसंख्या का विश्लेषण

जनसंख्या में किस किस उम्र का क्या-क्या अनुपात है, यह जान

लेना भी जरूरी है। इस से हमें यह पता चल जाता है कि पूरी जनसंख्या का कितना भाग काम में जुटा रह सकता है।

१६३१ई०में प्रति दस हजार व्यक्तियों के पीछे आयु के अनुसार जो संख्या-भेद था वह नीचे दिया गया है:—

१६३१ ई०

उम्र	स्त्री	पुरुष
०—१०	२८८६	२८०२
१०—२०	२०६२	२०८६
२०—३०	१८५६	१७६८
३०—४०	१३५१	१४३१
४०—५०	८६१	६६८
५०—६०	५४५	५६१
६०—७०	२८१	२६६
७० से ऊपर	१२५	११५

ऊपर के आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तान में जन्मसंख्या का अनुपात कितना ज्यादा है और हर दसवें साल तक कितनी ज्यादा मौतें हो चुकी होती हैं १५ और ४०वर्षके बीचमें काम करने-योग्य लोगों की जो जनसंख्या है वह सारी जनसंख्या की सिर्फ ४० फीसदी है। इग्लैंड और फ्रांस में यही संख्या क्रमशः ६० और ५३ फीसदी है। यह भी जाहिर है कि काम करनेवालों का बेकार व दूसरे का सहारा लेनेवालों से अनुपात घटता ही गया है। इसके आंकड़े निम्नलिखित हैं:—

१६२१ ई०	४६:५४
१६३१ ई०	४४:५६

इसका मतलब यह हुआ कि काम करनेवालों का बोझ बढ़ रहा है और उनके सहारे गुजर करने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इससे भी इस देश में फैले दुख और अशान्ति का कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है।

: ३ :

जन्म और मौत

किसी भी जनसंख्या का जोड़ मौत से जन्म की अधिकता और प्रवासी देशवासियों की सख्या से देश में विदेशियों की संख्या की अधिकता पर निर्भर करता है। हिन्दुस्तान की जनसंख्या की समस्या मे इस पिछले तत्व अर्थात् विदेशियों की जनसंख्या का कोई खास स्थान नहीं है। विदेशियों के लिए हमारे देश में आकर रहने और बसने का कोई आकर्षण अब नहीं रहा। इसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अड़चनें पेश आती हैं। यह देश अब सोने की चिड़िया नहीं रहा। अब गरीबी और रोगों के घर इस हिन्दुस्तान का निवासी होने का प्रलोभन किस को होगा ? भारत से बाहर जाकर बसने में भी इस देश की जनसंख्या की समस्या का कोई स्थायी हल नहीं मिलता। संसार में कहीं भी भारतीयों का स्वागत नहीं किया जाता। हमारे निकटतम पड़ोसी भी हमें अपने देशों में आकर बसने से टोकते हैं। गोरे देशों में तो हम काले लोगों के बसने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अपने देश से बाहर जाकर हिन्दुस्तानी खासकर बर्मा, लङ्का, मलाया और अफ्रीका में बसे हैं। डा० हट्टन का कहना है कि १९३१ ई० में लगभग २५ लाख हिन्दुस्तानी मर्दुमशुमारी के समय भारत से बाहर बसे हुए थे—यानी कुल जनसंख्या का २/३ से कुछ ही अधिक हिस्सा। लङ्का के रबड़ के कारखाने और चाय के बगीचे प्रवासियों के लिए आकर्षण की चीज रहे हैं। पर अब लङ्का में हिन्दुस्तानी

मजदूरों के खिलाफ पक्षपात किया जा रहा है। मलाया के रबड़ के कारखानों, टीन की खानों और तेल के सोतों में काम करने के लिए भी हिन्दुस्तानी वहां जाकर बस गये हैं। अफ्रीका की आर्थिक उन्नति में हिन्दुस्तानी 'कुलियों' का बड़ा हाथ रहा है। प्रवासी भारतीयों की राह में पेश अड़चनों और बाहरी कठिनाइयों के सिवा हमें इस बात पर भी विचार करना है कि हिन्दुस्तानी स्वभाव से ही बाहर जाना कम पसन्द करते हैं। अकसर औसत हिन्दुस्तानी खेती के धन्धे में जुटा मिलेगा। खेती में लगे लोग अपने खेतों को छोड़ कर नहीं जा सकते। फिर वर्ण और जाति की व्यवस्था ऐसी है जो हमारी दूर-दूर की गति-विधि में रुकावट डालती है। कहीं हम विदेशियों के सम्पर्क में आकर अपनी जाति न खो बैठें! यही कारण है कि हम देश से बाहर तो क्या देश के अन्दर भी बड़ी तादाद में दल-के-दल एक जगह से दूसरी जगह जाकर नहीं बसते। १९३१ ई० में जनसंख्या के सिर्फ केवल ८ फीसदी भाग की अपने जन्म के जिलों से बाहर गणना हुई थी। हिन्दुस्तानी अपने घरों में ही रहना पसन्द करते हैं। फिर भी देश के अन्दर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की ओर लोगों की टुकड़ियां आती-जाती रहती हैं, परन्तु इसका देश की जनसंख्या पर कोई असर नहीं पड़ता।

इस तरह मृत्युसंख्या से जन्मसंख्या की अधिकता ही हिन्दुस्तानी जनसंख्या को निर्धारित करती है। भारत की जन्म और मृत्यु का अनुपात संसार भर में सबसे अधिक है। १९४१ई. में जन्म-संख्या और मृत्यु-संख्या प्रति १००० जन्मो के पीछे क्रमशः ३३ और २२ थी।

तुलना की जाय तो कुछ दूसरे देशों की और हमारी जन्म और मृत्यु संख्या इस तरह है—

१९३१—३५ ई०

देश	जन्म-संख्या	मृत्यु-संख्या
ब्रिटेन	१५.५	१२.२
फ्रांस	१६.५	१५.७
अमरीका के संयुक्त राष्ट्र	१७.३	१०.९
जापान	३१.६	१८.१
हिन्दुस्तान	३३	२२

संसार के अन्य देशो में जन्म और मृत्यु दोनों ही की संख्याओं में घटने की प्रवृत्ति पाई गई है। लेकिन हिन्दुस्तान में पिछले ५०-६० वर्षों से ऐसा कोई भी झुकाव देखने को नहीं आया। नीचे लिखे आँकड़ों से इसका पता चल जायेगा:—

हर हजार के पीछे

सन्	जन्मसंख्या	मृत्युसंख्या
१८८५-९०	३६	२६
१८९०-०१	३४	३१
१९०१-११	३८	३४
१९११-२१	३७	३४
१९२१-३१	३५	२६
१९३१-३५	३५	२४
१९४१	३३	२२

इन आंकड़ों से तीन बातें स्पष्ट होती हैं—(१) पश्चिम की तरह हमारे जन्म और मृत्यु दोनों के अनुपात में समय के साथ-साथ कमी नहीं हो रही है, (२) हमारा जन्म का अनुपात निरन्तर ही अचल-सा रहा है और (३) हमारी मृत्यु के अनुपात में ही घटती-बढ़ती होती रही है तथा हमारी जनसंख्या के निर्धारण में इसी का हाथ मुख्य है। यह तथ्य हमारे दुर्भाग्य का सूचक है।

संसार के आगे बढ़े हुए दूसरे देशों में जन्म और मृत्युसंख्या किस

तरह घटती रही है, यह बात नीचे लिखे आंकड़ों से स्पष्ट हो जायगी—

देश	जन्मसंख्या		
	१८८१-६१	१६२१-२५	१६२६-३०
ब्रिटेन	३२.५	२०.४	१७.२
फ्रांस	२३.६	१६.३	१८.२
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	...	२२.५	१६.७
जर्मनी	३६.८	२२.१	१८.४
	मृत्युसंख्या		
ब्रिटेन	१६.२	१२.४	१२.३
फ्रांस	२२.१	१७.२	१६.८
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	..	११.८	११.८
जर्मनी	२५.१	१३.३	११.८

हिन्दुस्तान में जन्मसंख्या की अधिकता अलग-अलग देशों की ०से ५ और ५ से १० तक की आयु के समूहों की तुलना से भी मालूम पड़ेगी:—

देश	आयु ०—५	आयु ५—१०
ब्रिटेन	७.५	८.३
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	६.३	१०.३
जापान	१४.१	१२.१
भारत	१५.३	१३.०

दुःख तो इस बात का है कि भारत में जन्म और मृत्यु के अनुपात पर मनुष्य का अपना काबू नहीं है। हम सन्तान पैदा करना जान-बूझ कर वश में नहीं रखते तथा मृत्यु का सामना करने की न हम में ताकत है और न ही हमारे पास ठीक साधन हैं। पैदाइश पर काबू करने में हमारा अपना धर्म, अपना समाज रुकावटें डालता है। मौत का सामना करने के लिए ताकत कहां से आये जब कि हमें खुराक ही काफी तौर-

पर नहीं मिलती। न रोगों की पहचान और रुकावट के लिए काफी तादाद और फैलाव में चिकित्सक और चिकित्सालय ही मौजूद हैं। जन्म और मृत्यु के अनुपात पर अपना वश न होने से हिन्दुस्तानियों को अगणित तकलीफें सहनी पड़ती हैं।

हिन्दुस्तान में जनसंख्या के इतने अधिक होने के कारणों में हमारे देश में व्यापक विवाह-प्रथा ही खास है। विवाह के खिलाफ कोई भी दलील यहां काम में नहीं आ सकती और न ही प्रस्तुत आर्थिक कठिनाइयां इसमें बाधा डाल सकती हैं। विवाह से रहन-सहन के ढंग में कमी करनी पड़ जायगी, यह विचार भी विवाह को रोक नहीं सकता। रहन-सहन के रंग-ढंग के ठीक होने का तो हमारे देश में विचार ही नहीं किया जाता। स्त्री पाकर ज्यादातर हिन्दुस्तानी अपना एक सहचर, जीवन के लिए अनाज पैदा करने को मिलकर प्रयत्न करनेवाला एक साथी, चारों ओर छाई हुई उदासीनता और अकेलेपन को मिटाने-वाला एक साझीदार जुटा लेता है। एडम स्मिथ का यह कथन कि "गरीबी की अवस्था में अधिक सन्तानें पैदा होती हैं," यहां ठीक उतरता है। कुछ विचारकों के अनुसार रहन-सहन का ढंग जितना नीचा हो और बौद्धिक उन्नति जितनी कम हुई हो, सन्तान की पैदाइश उतनी ही अधिक हुआ करती है। यह देखने में आता है कि गरीब मनुष्य के अधिक बच्चे हुआ करते हैं। इसका भी एक कारण है। धनवानों और उन्नत समाज में पुरुषों के पास स्त्री के अतिरिक्त और भी बहुत से मनो-रञ्जन के साधन होते हैं, पर गरीब मनुष्यको अपनी स्त्री को छोड़ और कहीं भी दिल बहलाने का सामान नहीं मिलता।

१९३१ई० में धन्धों के अनुसार सन्तान पैदा करने की तफसील इस तरह दी गयी थीः—

धन्धा	हर घराने में बच्चों की औसतन गणना
कच्चा सामान पैदा करनेवाले	४.४
तैयार माल के बनाने और बेचनेवाले	४.२
सार्वजनिक शासक और बुद्धिजीवी	४.०
वकील, डाक्टर, अध्यापक	३.७

हिन्दुस्तान में सबसे अधिक सन्तान तो एनिमिस्ट लोगों की हुआ करती है। १९३१ ई० में १५ से ४० वर्ष की आयु की विवाहित स्त्रियों की प्रतिशत संख्या के पीछे दस वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों की संख्या नीचे लिखे अनुसार थीः—

सब धर्मावलम्बियों की	१७०
हिन्दू	१६४
मुसलिम	१७८
सिख	१९२
एनिमिस्ट	१९६

जन्मसंख्या मे बढ़ती का अनुपात मुसलमानों मे हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक है। १८८१ और १९३१ मे जब कि हिन्दू २६.८ फीसदी बढ़े, मुसलमानों की संख्या में ५५ फीसदी वृद्धि हुई। इसका नतीजा यह हुआ कि जब १८८१ ई० में हिन्दुओं का सारी जनसंख्या से ७४.३ फीसदी का अनुपात था, वह आज ६५.९३ प्रतिशत रह गया है। इसका कारण मुसलमानों का गोश्त आदि उत्तेजक चीजें खाना और हिन्दुओं में स्त्रियों की कमी आदि है। हिन्दू विधवाएँ फिर शादी भी नहीं करतीं। १९३१ ई० में सन्तान-योग्य हिन्दू स्त्रियों की समस्त संख्या ५ करोड़ ४४ लाख थी और इनमे से ८३ लाख विधवाएं थीं। मुसलमानों में एक से अधिक विवाह करने की प्रथा भी प्रचलित है।

विवाह की व्यापक सामाजिक रस्म के अलावा छोटी उम्र में और

एक स्त्री से अधिक के साथ विवाह करना भी जनसंख्या के अनुपात को प्रभावित करता है। "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" के सिद्धान्त के अनुसार कम उम्र में ही लड़कियों का विवाह कर देने का अभ्यास अभी तक चालू है। १० में से हर ८ लड़कियां १५-२० साल की उम्र तक ब्याह दी जाती हैं। इससे बहुत कम उम्र के विवाह भी प्रचलित हैं। बड़ी आयु की अविवाहिता लड़की की ओर समाज अंगुली उठाने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि कम उम्रवालों की सन्तान पूर्णरूप से स्वस्थ नहीं होती; उनमें रोगों आदि का सामना करने की ताकत भी नहीं रहती और साथ ही विधवाओं की संख्या भी बढ़ती है।

जल्द विवाह और कम आयु में मातृत्व के दायित्त्व के फलस्वरूप, जैसा कि गांधीजी ने कहा है—"हीन-क्षीण, इन्द्रियाधीन, और निर्बल तथा बिना किसी रोकथाम के बढते हुए अगणित बच्चे"—पैदा होते हैं। इसी के परिणाम-स्वरूप हिन्दुस्तान में जच्चा और बच्चे की मृत्युसंख्या जगत् भर में प्रायः सबसे ही अधिक है। भारत में इसी से जन्म के समय अनुमानित उम्र में भी बहुत ही कमी पायी जाती है। हिन्दुस्तान में आयु का अनुपात बहुत ही कम है तथा इसमें अधिक घटाबढ़ी नहीं हुई है:—

जन्म के समय अनुमानित आयु

	१८८१ ई०	१९०१ ई०	१९३१ ई०
पुरुष	२३·६७	२३·६३	२६·९१
स्त्री	२५·५८	२३·५४	२६·५६

पश्चिमी देशों में अनुमानित आयु में पर्याप्त उन्नति हुई है—

	१८८१—९० ई०	१९३३ ई०
इंग्लैंड और वेल्स	४५·२९	६०·७८
जर्मनी	३८·६७	५७·३५
[illegible]	४४·७७	५५·९५

अनुमानित आयु में कमी पर ऊपर कहे कारण के अतिरिक्त वातावरण का असर भी मुख्य होता है। हमारे देश में आज नागरिक सफाई का अधिक विचार नहीं है। चिकित्सा का पर्याप्त प्रबन्ध नहीं है। प्रति ४१८०० व्यक्तियों के पीछे सिर्फ एक अस्पताल है। जो अस्पताल हैं उनमें भी सब जरूरी सामान नहीं हैं। यहां रोग और गन्दगी को चुनौती नहीं दी जाती। इंग्लैण्ड में प्रति १०००नागरिकों के पीछे प्रतिदिन रुग्ण व्यक्तियों की संख्या जहां ३० है वहां हमारे देश में ८४ है। हमारी खुराक में पोषक तत्त्वों की कमी है। हम में से जो भाग्यवान हैं वह केवल पेट भर खाते ही हैं। अन्न में जो शक्ति देनेवाले तत्त्व होते हैं वह आम लोगों को नहीं मिलते। हमारी आबादी की समस्या पर इन सब बातों का भी असर पड़ता है।

स्वयं गरीबी भी जन्मसंख्या की वृद्धि का कारण है। इससे एक निराशा और भविष्य के विषय में चिन्ताहीनता-सी उत्पन्न हो जाती है।

मृत्यु-संख्या के अनुपात को बढ़ाने में कई कारणों का हाथ है, जिनमें एक बड़ा कारण आबोहवा है। जिस किसी भी कारण से हमारे तन या मन की अवस्था में अवनति हो, उससे घातक रोगों का विरोध करने की हममें शक्ति नहीं रह जाती। अन्धविश्वास और अज्ञान भी अपना बुरा प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहते। हमारे ग्रामों की भीतर और बाहर से जो अस्वस्थ हालत है उस से भारत के मृत्यु-अनुपात में पर्याप्त वृद्धि होती है। यहां की जनसंख्या को कम रखने के लिए प्रकृति अधिक मृत्यु के साधन का उपयोग करती रहती है। पश्चिम और पूर्व के आधुनिक सभ्यता के देशों में मृत्यु-अनुपात को कम करने के सतत प्रयत्न हो रहे हैं। भारतवर्ष में इस दिशा में अबतक कुछ भी नहीं किया गया। हमारे देश की मृत्यु-संख्या "हमारे असीम दुःख और कष्ट की सूचक है और देश के नाम पर एक धब्बा है।"

मौत के सवाल की गम्भीरता को समझने के लिए कुछ बातें ध्य

में रखनी चाहिएं। रूस को छोड़कर सारे यूरोप की जनसंख्या १६३१ ई० में ३७ करोड़ ८० लाख थी और भारत की जनसख्या ३३ करोड़ ८८ लाख थी। भारत से अधिक आबादी वाले यूरोप मे १६२३ और १६३० के बीच ४ करोड़ २६ लाख मौतें हुईं जब कि इसी काल में भारतवर्ष में ५ करोड़ २ लाख मौतें हुईं। हमारे देश में उन्नीसवीं सदी के ३१ अकालों से डिग्बी और लिली के अनुमान के अनुसार ३ करोड़ २४ लाख व्यक्तियों को जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा। १६०१ ई० के अकाल से १० लाख लोग मरे। पिछले बंगाल के अकाल में ३० लाख हिन्दुस्तानी मौत के मुंह में गये। रस्सल और राजा के विचार में १६०१ और १६३१ ई० के मध्य में अलग-अलग रोगों से लोगो की जिस परिमाण में मौतें हुईं, वह इस तरह है—

रोग	मृत्यु-सख्या
हैजा	१ करोड़ ७ लाख
इन्फ्लुएन्जा	१ करोड़ ४० लाख
प्लेग	१ करोड़ २५ लाख
मलेरिया	३ करोड़

हमारे देश पर यमराज का राज है। रह-रह कर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक छूतछात के रोग फैल जाते हैं और अगणित लोगों को मौत के घाट उतार कर चले जाते हैं। जीवन मूल्यहीन हो रहा है। मलेरिया तो आम जनता का सच्चा साथी हो गया है और नियमित रूप से उनके शक्ति-स्रोत को चूसता रहता है। क्षय तथा इसी प्रकार की दूसरी गरीबी की बीमारियां बिना किसी विरोध के अपना संहार जारी रखती हैं और उनसे बचने की कोई खास कोशिश नही की जाती।

हमारी इस मृत्युसंख्या की एक महत्वपूर्ण बात बचपन में बच्चों की और मातृत्व-काल में माताओं की बड़े अनुपात में मौत है। बच्चा जनते समय उचित चिकित्सा आदि की सहायता न मिलने से ही ऐसा

होता है। प्रसूता को जिन अवैज्ञानिक हाथों से गुजरना पड़ता है वह भी इसमें मददगार होता है। छोटी अवस्था में ही मां-बाप बन जाने से उनकी सन्तान मे पर्याप्त मात्रा मे बल नहीं होता और वह शीघ्र ही कुम्हला जाते हैं। १९३८ई०को भारत सरकार की हेल्थ बुलेटिन न० २३ के अनुसार "१९३५ मे १२ लाख ५० हजार भारतीय बच्चों की एक वर्ष की आयु से पूर्व ही मृत्यु हो गई। इनमें से अधिकतर बच्चों की मृत्यु उचित खुराक न मिलने मे हुई।" यह सब कारण निर्धनता से उत्पन्न होते हैं। यही गरीबी का रोग भारतीय जनता की जड़ें बराबर काटता रहता है।

प्रति १००० जन्मे बच्चों मे से १७६ की जिन्दगी के पहले साल में ही मौत हो जाती है। इंग्लैण्ड में यही संख्या ६० है। भारत में जन्मे हर एक लाख बच्चों मे से ४५००० पांच वर्ष की आयु पूरी होने तक ही जिन्दगी खत्म कर चुकते हैं। इंग्लैण्ड में (१९१०) यही संख्या २०६१२ थी। भारत के नगरों में बच्चो की मौत खास तौर से ज्यादा है।

१९३१ में प्रति १००० पीछे बच्चों की मौत—

बम्बई २७४	लण्डन ६६
दिल्ली २०२	बर्लिन ८२

दुनिया के नये राष्ट्रों ने इस अनुपात को स्त्रियों को प्रसव-काल में उचित सुविधाएं देकर, विवाह की आयु को बढ़ाकर और चिकित्सा सम्बन्धी ठीक सहायताएं देकर काफी कम कर दिया है। खान-पान को भी इस प्रकार नियमित और ऐसी पर्याप्त मात्रा मे निश्चित कर दिया है कि गर्भावस्था और दूध पिलाने के समय कोई माता अपने स्वास्थ्य को न गँवा दे। दूसरे देशों से शिशुओ की मृत्यु के अनुपात का मुकाबला कीजिए:—

१६३१-३५ ई०

ब्रिटेन	६५	जापान	१२४
संयुक्तराष्ट्र अमरीका	५१	भारत	१७१

जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रसूति-काल में जच्चाओं की मौत भी हिन्दुस्तान मे बहुत अधिक तादाद में होती है। सर जान मेगों के कहने के मुताबिक हर १००० जच्चाओं के पीछे यह अनुपात २४'०५ है। जीवन के प्रति हम कितने उदासीन हैं, इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है। अधिक संख्या में जच्चा की मौत तो समाज के अत्याचार के कारण होती है जो उसे असमय में ही गर्भ धारण करने के लिए विवश करता है। जल्द विवाह, प्रसव-काल में अधिकतर अस्वस्थ वातावरण, हमारी अशिक्षित दाइयां सभी इस अनुपात को बढ़ाने मे हाथ बंटाते हैं। प्रजनन-योग्य काल में स्त्रियो की पुरुषों से अधिक मौतें होती हैं। उदाहरण के तौर पर पंजाब में १५ और ४० वर्ष की आयु के बीच प्रति १००० के पीछे पुरुषों और स्त्रियों की मृत्यु-संख्या क्रमशः १०'७ और १३'२ है। इंग्लैण्ड मे जच्चा की मौत और स्त्रियों का अनुपात १००० के पीछे ४'११ है, जिसको वहां बहुत गम्भीर दृष्टि से देखा और शोचनीय समझा जाता है।

भारत में, जहां थोड़ी उम्र की स्त्रियों को गर्भ धारण करना पड़ता है वहां उनको बार-बार गर्भ धारण करने का अत्याचार भी सहना पड़ता है। इस प्रकार बार-बार बच्चों को जन्म देने से माताओं में शक्ति शेष नहीं रह जाती। इस तरह शक्ति और जीवन-नाश का सबूत इन आंकड़ों से भी मिल सकता है कि भारत में प्रत्येक पत्नी औसतन ४'२ बच्चों को जन्म देती है, किन्तु उनमें से केवल २'६ ही जीवित रहते हैं।

जन्म और मृत्यु के आंकड़ों का हिसाब करके हमें मालूम पड़ता है कि इतनी बड़ी मात्रा में जन्म-अनुपात के होते हुए भी हमारी जन-संख्या उस तेजी से नहीं बढ़ी जिसके अनुसार संसार के दूसरे राष्ट्रों की

जन-संख्या की वृद्धि हुई है। इसका कारण हमारी ज्यादा मृत्यु-संख्या ही है। दसवें वर्ष से पहले ही ४५ फीसदी हिन्दुस्तानी संसार छोड़ चुकते हैं तथा ३०वर्ष तक तो जन-संख्या का ६५फीसदी शेष नहीं रहता। क्योंकि मृत्यु इतनी बड़ी संख्या में हमारे चारों ओर अर्से से विद्यमान है, इसलिए हमें इसकी पूरी जानकारी नहीं है। हर १,००,००० जीवितों के पीछे ३० वर्ष की आयु में इंग्लैण्ड में ७२ हजार और हिन्दुस्तान में सिर्फ ३५ हजार ८ सौ व्यक्ति जीवित रह जाते हैं। जुदा-जुदा देशों में जन्म और मृत्यु का हिसाब करके शेष जीवित रहनेवालों का अनुपात निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट हो जायगाः—

देश	१८९०-०१	'०१-११	'२१-२५	'२६-३०	'३१-३५
ब्रिटेन	११ ७	११'८	८'०	४'६	३'३
अमरीका	...	...	१०'७	७'६	६'४
जापान	८'६	११'४	१२'८	१४.२	१३'५
जर्मनी	१३.६	१५.६	८.८	६'६	४'६
फ्रांस	०'६	१'२	२'१	१'४	०'८
भारत	४'१	४'३	६'७	६'०	१०'२

पश्चिमी देशों मे १९२१ ई० से जीवित रहनेवालों का अनुपात क्रमशः कम होता जा रहा है। १९२५ ई० तक भारत में यह अनुपात दूसरे देशों से कम था। १९२१ के बाद १९४३ तक भारत में कोई भी बड़ी आफत नहीं आई और इसीसे यह अनुपात बढ़ा। बंगाल के अकाल और उसके बाद देश भर में खुराक की न्यूनता के परिणाम १९५१ के आंकड़ों में प्रत्यक्ष होंगे।

१९२१ और १९३१ई०के बीच जन-संख्या की वृद्धि का जो अनुपात था उससे १९३१और१९४१ई०का अनुपात अधिक रहा है। हिन्दुस्तान की स्थिति के अनुसार यह अनुपात अधिक और चिन्ता का कारण है। इस सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि क्या हमने बढ़ती हुई जन-संख्या के हिसाब से अपनी खुराक-अनाज आदि की उपज को बढ़ाया

है ? जन-संख्या की समस्या पर, अनाज की प्राप्य मात्रा की ओर संकेत किये बिना कभी विचार नहीं किया जा सकता। इस समस्या पर विचार-विनिमय के दौरान में देश के आर्थिक संगठन, रहन-सहन के स्तर और खाद्य की प्राप्य मात्रा का विचार कर लेना जरूरी है। क्या हम अपने अनाज पैदा करने के साधनों में उसी अनुपात में उन्नति कर रहे हैं, जिस अनुपात से कि हमारे देश की जन-संख्या बढ़ रही है ?

: ४ :

हमारा आर्थिक इन्तजाम

हिन्दुस्तान का खास उद्योग-धन्धा खेती है और हमारे देश के तीन-चौथाई लोग इसी पर गुजर-बसर करते हैं। आशा तो यह की जानी चाहिए कि एक ऐसे धन्धे का, जिस पर कि हिन्दुस्तान की इतनी बड़ी जन-संख्या का निर्वाह होता हो, समुचित रूप मे संगठन होगा और इतने बडे परिमाण में जनता का जिस एक धन्धे पर आसरा है, वह खूब तरक्की पर होगा। दूसरे देशों में खेती का भी बाकायदा एक धन्धा बना लिया गया है जिससे यह एक मुनाफे का पेशा बन गया है। बहुत-से देश कारखानों पर ही पूरा ध्यान देकर अपने बनाये माल के बदले में दूसरे देशों से खेती को उपज ले लेते हैं। सभी देशों में किसी-न-किसी धन्धे में खसूसियत हासिल कर लेने की धुन है और इस तरह की कोशिशो से अन्तर्राष्ट्रीय बंटवारे की नींव पडती है। युद्ध की अवस्था में इससे खिलाफ यह उचित जान पडता है कि प्रत्येक देश को केवल अपने ही आर्थिक इन्तजाम पर अपनी सभी जरूरतों के लिए निर्भर होना ठीक है। इसके लिए भी उत्पादन की दिशा मे बड़ी कोशिशों की जरूरत है।

लेकिन हिन्दुस्तान अपने खास धन्धे—खेती में—अबतक करीब-करीब ससार के सभी देशों से पिछड़ा हुआ है। कारखाने आदि तो क्या, अपने लिए हम ज़रूरी मिकदार में खुराक भी नहीं जुटा सकते। अक्सर हमारी जिन्दगी के हर पहलू की तरह खेती में भी हमारे

यहां परम्परा का ही बोलबाला है। हमारी खेती का मुख्य आधार बैल है। किसान अपने बैल और अपने परिवार की सहायता से अपने धन्धे में वही तरीके बरत रहा है जो सदियों पहले उसके बाप-दादे बरता करते थे। भारत में जानवरों की संख्या में नियमित वृद्धि हुई है। १६०० ई० में जहां ८ करोड़ ७१ जानवर थे वहां १६३३ ई० में इनकी संख्या १५ करोड़ २७ लाख तक पहुंच गई और अब २० करोड़ के लगभग है। इन २० करोड़ पशुओं में से दूध देनेवाले पशु केवल ६ करोड़ हैं जिनमें गायें पौने चार करोड़, भैंसें डेढ करोड़, और बकरियां पौने चार करोड़ हैं। इन जानवरों की खूराक के लिए हम १ करोड़ ४ लाख एकड़ (१६४०—४१ई०) भूमि में चारा पैदा करते हैं। इन जानवरों के चारे की खेती-बाड़ी का रकबा बराबर बढ़ता जा रहा है जो कि नीचे लिखे आंकड़ों से साफ प्रकट होता है:—

१६३१-३२	१६३३-३४	१६३७-३८	१६४०-४१
६३,८६,०००	६६,७२,०००	१,०४,११,०००	१,०४,६६,०००

डा० ज्ञानचन्द के विचार से "इन कमजोर और बेकार पशुओं की इतनी बड़ी संख्या के लिए उचित आहार आदि का प्रबन्ध करना देश के आर्थिक इन्तजाम पर व्यर्थ का बोझ है।" हमारे जानवर नस्ल और कामकाज में हल्के साबित हुए हैं और उन्हें सुधारने का यत्न देश में नहीं किया जाता। सब प्रकार से अनुचित बोझ सिद्ध होने पर भी हम उनसे छुटकारा पाने की बात नहीं सोच सकते।

दूसरी ओर हिन्दुस्तान के औसत किसान की मेहनत कई कारणों से उतना फल नहीं देती जितना दूसरे देशों के किसानों की मेहनत। भारतीय किसान की सूझ-बूझ दादा-परदादा से चली आती जबानी तालीम की हद को नहीं लांघ पाती। अपने धन्धे में खास तरक्की करने का न तो उसे इरादा ही होता है और न उसके पास इसके लिए उपाय और साधन ही हैं। उसके हल और दूसरे सामान पुराने नमूनो पर ही बनते हैं। नई ईजादों को खरीदने के लिए उसके पास धन भी नहीं है

और न ही रुचि है। जिस खेती को वह बारम्बार कर रहा है उसमें कोई उन्नति नहीं हो पाती, क्योंकि वह अच्छे बीजों का इस्तेमाल नहीं करता। खेतों में खाद के लिए वह गोबर का प्रयोग कर सकता है, किन्तु और किसी प्रकार के ईंधन के सुलभ न होने से वह उसे अपने रसोईघर में काम ले आता है। खेती के पानी के लिए वह आसमान की ओर ताका करता है और कुदरत के इस सहारे की उम्मीद पर वह भाग्यवादी और अपेक्षाकृत आलसी हो गया है। लगभग २५ करोड़ एकड़ के जो भूमि भारत में बोई जाती है उसमे से केवल ५ करोड़ ६० लाख को मनुष्य अपनी कोशिश से पानी देता है, जिसमें ३ करोड़ एकड़ भूमि को नहरों से, १ किरोड़ ४० लाख को कुओं से और १ करोड़ २० लाख को तालाबों और दूसरे साधनों से सींचा जाता है। शेष १६ करोड़ ४० लाख एकड़ भूमि का भगवान ही मददगार है। भूमि का बोया गया हर बीघा दूसरे देशों से यहां बहुत कम अनाज पैदा करता है। अकसर किसान कर्ज से दबे रहते हैं, जोकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है। उसके कुनबे की संख्या में जल्द बढ़ती होती है। उसके मरने के बाद उसकी जमीन उसके लड़कों में समान रूप में बँट जाती है और इसका परिणाम यह होता है कि भूमि के इतने छोटे-छोटे टुकडे हुए जा रहे हैं कि उनमे खेती-बाड़ी फिजूल होती जा रही है। जमीन छोटी-छोटी इकाइयों में छिन्न-भिन्न हो गई है। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों के इस दोष से कृषि में कोई सुधार असम्भव हो जाता है। वह टुकडे तो उनपर लगाई गई मेहनत की भी पूरी कीमत नहीं दे सकते। गहरी जुताई(इन्टेंसिव कल्टिवेशन)की कृषि असम्भव होगई है।

औसतन हिन्दुस्तानी किसान की खूराक नीचे दर्जे की है। वह जीता कहां है; वह तो स्वयं उत्पन्न हुए पौदों की तरह बढता और असमय कुम्हला जाता है। उसके भोजन में पोषक तत्त्वों का नितान्त अभाव है। हमारे किसान की, जोकि हमारी जनसंख्या का तीन-चौथाई

भाग है, अवस्था इतनी पिछड़ी हुई है कि उसे उबारना कोई आसान बात नहीं है ।

१९४०–४१के आंकड़ों के अनुसार सभी बोई गई जमीन का रकबा २१ करोड़ ३९ लाख ६३ हजार एकड़ था। यदि हम उन क्षेत्रों को भी इस संख्या में शामिल कर लें जो कि वर्ष में एक बार से अधिक बोये गये थे तो यह संख्या लगभग २४ करोड़ ८० लाख एकड के हो जाती है। इसके अलावा ९ करोड़ ७९ लाख एकड भूमि ऐसी मानी गई थी जिस में कि खेती-बाडी हो सकती थी लेकिन बंजर न होने पर भी खेती न करने से वह बेकार रह गई। कृषि कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार इसमें खेती नहीं हो सकती, परन्तु बौले और रौबर्टसन ने इस बात को सिर्फ फर्जी बताया है। फिर भी बोने-योग्य भूमि में हिन्दुस्तान में बड़ी मात्रा में बढ़ती नहीं हो सकती।

१९४०–४१ के आंकड़ों के अनुसार जो-जो अनाज बोये गये थे, उन का विवरण इस प्रकार है:—

अनाज	एकड़ जिनमें खेती की गई	बोई खेती के रकबे का प्रतिशत
चावल	६,८८,४९,०२०	२८.६
गेहूं	२,६४,४६,४२९	१०.७
जौ	६३,२८,३८१	
ज्वार	२,१२,४८,८५०	८.९
बाजरा	१,४०,८४,४८२	५.४
रागी	३५,०७,०५३	
मकई	५७,२९,७०४	
चने आदि	१,२७,०६,४९८	४.८
दालें आदि	२,८२,४७,३८४	
अनाज का जोड़	१८,७१,४७,७६५	

इन अनाजों के अलावा बाकी खेती का विवरण इस प्रकार है:—

तैलबीजों का रकबा	१,६७,००,१८७	एकड़
रेशेदार उपज का रकबा	१,९२,०९,७९७	,,
अखाद्य उपज का रकबा	११,२८,०००	,,

इन आंकड़ों से पता चलता है कि प्राप्य रकबों के ५ में से ४ भागों में खाद्य अन्नादि की कृषि की जाती है और चावल तथा गेहूँ भारतीयों के स्वाभाविक आहार हैं।

इस बात की ओर पहले भी इशारा किया जा चुका है कि प्रति एकड़ भारत की उपज दूसरे देशों की अपेक्षा कम है और पश्चिम के आजकल के देशों की तुलना मे तो हिन्दुस्तान की उपज बहुत ही कम है। लीग आफ नेशन्स की पुस्तक 'उद्योगीकरण और विदेशी व्यापार' (१९४५ ई०) के अनुसार उत्तर-पश्चिमी यूरोप के देशों में गेहूं की प्रत्येक ऐक्टर[1] से उपज २५ से ३० मेट्रिक क्विण्टल[2] होती है, पूर्वी यूरोप की ९ से १२, चीन में लगभग ११ और भारत में केवल ७ क्विण्टल के करीब होती है। देखा गया है कि जिन किन्ही देशों में जनता को जितनी अधिक संख्या खेती के व्यापार में लगी है, वहां उतनी ही पैदावार की औसत कम होती है।

कपास का उपज तो मुकाबले में बहुत कम है। इसकी मिश्र में फी एकड़ ३९२ पौण्ड, संयुक्त राष्ट्र अमरीका में १४१ पौण्ड और हिन्दुस्तान में सिर्फ ९८ पौण्ड पैदावार होती है।

इन अंकों से तो सिर्फ एक बात ही स्पष्ट होती है कि हमारी कृषि की अवस्था बहुत ही पिछड़ी हुई है। चीन में जहां कि क्षेत्र और जनसंख्या भारत के प्रायः समान ही है, अवस्था और स्थिति तथा मूल उपज एक सी ही है और जनसंख्या का अधिक भाग छोटे-छोटे टुकड़ों और खेती-बाड़ी की पैदावार पर निर्भर रहता है, वहां चावल और गेहूँ की प्रति एकड़ पैदावार भारत से दुगनी है तथा उस देश के निवासी भारत की अपेक्षा कृषि-क्षेत्र की लगभग आधी मात्रा पर ही अपना निर्वाह कर रहे हैं। स्वयं हिन्दुस्तान में ही औसतन किसान अपने खेत

---

१ लगभग अढाई एकड़।

२ अंग्रेज़ी तोल जो १ मन १० सेर के लगभग होता है।

से जो उपज प्राप्त करता है वह सरकारी खेतों और बड़ी जमींदारियों की उपज से बहुत कम होती है।

संसार के कुछ जुदा-जुदा देशों में फी एकड़ के पीछे पौण्ड के हिसाब से चावल की जो उपज होती है तथा इसमें जिस प्रकार घटा-बढ़ी हुई है, उसके आंकड़े इस प्रकार हैं—

देश	१०६–१३	२६-२७ से ३०-३१	३१-३२ से ३५-३६	३६-३७	३७-३८	३८-३९
हिंदुस्तान (बर्मा सहित)	९८२[1]	८११	८२९	८६१	८२६	७२८
बर्मा	...	८८७	६४५	...	८१३	९५९
अमरीका	१०००	१३२३	१४१३	१५०५	१४७१	१४६९
जापान	१८२७	२१२४	२०५३	२३३९	२३०५	२२७६
मिश्र	२११९	१८४५	१७९९	२०८३	२००१	२१५३

इन आंकड़ों से यह भी स्पष्ट होगा कि हमारे देश में चावल की उपज हर साल कम होती जा रही है। गेहूँ की उपज के आंकड़े इस प्रकार हैं; जिससे पता चलता है कि भारत की सी कम पैदावार और किसी भी देश में नहीं है:—

	१९०९–१३ ई० की औसत	१९२४–३२ ई० की औसत
हिन्दुस्तान	७२४	६३६
अमरीका	८५२	८४६
कनाडा	११८८	९७२
आस्ट्रेलिया	७०८	७१४
यूरोप	१११०	१,४६
हालैण्ड	११८५	१९७०

1—१९१४–१५ से १९१८–१९ की औसत।

खेतीबाड़ी में हमारी उपज दूसरे हर एक देश से कम है। इस की खास वजह यह है हमारी जमीन की मालिकी में ७२ फी सदी टुकड़े आर्थिक दृष्टि से शून्य के बराबर हो चुके हैं।

बोये जाने वाले खेतों का सिर्फ एक तिहाई हिस्सा ही किसानों के हाथ में है। बाकी बड़े-बड़े जमींदारों और जागीरदारों के हाथ में है, जिन का जमीन से कोई सम्बन्ध वास्ता नहीं है। भूमि के टुकड़े इतने छोटे हो चुके हैं कि अब हर परिवार के पीछे औसतन लगभग ३-४ एकड़ भूमि ही कृषि के लिए रह गई है। इससे जहाँ कृषि की उपज पर खराब असर पड़ता है वहाँ किसी अकाल के समय में करोड़ों किसानों द्वारा पैदा किए थोड़े-थोड़े अनाज को इकट्ठा करना भी कठिन हो जाता है। अनाज की उपज के कम होने पर अथवा पैदावार के भावों के बढ़ जाने पर किसान अपनी उपज नहीं बेचते और इस प्रकार अन्न-सङ्कट के काल में देश में एक अन्दरूनी अड़चन पैदा हो जाती है।

खेती की इस खराब हालत के साथ हमारे मुल्क में कल-कारखानों की भी उचित अनुपात में उन्नति नहीं हुई है। जैसा कि हमने देखा है, जन संख्या का बहुत थोड़ा भाग हमारे देश के उद्योग धन्धों में लगा है। हमारे देश में खेती और उद्योग-धन्धे, अभी शुरूआत की अवस्था में हैं। यहाँ खेती का आधार कच्चा है, इसलिए सारी आर्थिक व्यवस्था सदा डाँवाडोल रहती है और स्थिर या कायम नहीं रह पाती। वर्षा न होने से, आँधी तूफानों से, बाढ़ों से, किसी भी वर्ष अकाल पड़ सकता है और लाखों लोग निराहार मर सकते हैं। हमारे देश में सुसंगठित और असंगठित उद्योग-धन्धों में जहाँ जन संख्या का केवल १०.३ फी सदी लगा है, वहाँ इंगलैण्ड में यही अनुपात ४८ फी सदी का है।

सभी अर्थशास्त्रियों का दावा है कि हिन्दुस्तान में कल-कारखानों के लिए कच्चे सामान की कमी नहीं है। आवश्यक धातुएँ और

खान से निकलने वाली चीजें ठीक मिकदार में इस देश में पायी जाती हैं और कुछ चीजें तो जरूरत से भी ज्यादा मिकदार में मौजूद हैं।

हमारी जन-संख्या का केवल ५.८३ फी सदी व्यापार में लगा है। यह अनुपात १९०१ ई० से लगभग स्थायी ही बना हुआ है।

भारत के उद्योग-धन्धो की शुरूआत हालत में हैं इसका ज्ञान हमें नीचे लिखे आँकड़ों से अच्छी तरह हो जायेगा, जिसमें १८९६-१९०० ई० से डालर के १९२६-२९ ई० के भावों के अनुसार मूल्य पर आश्रित हर आदमी के पीछे निर्माण के अङ्क दिये गए हैं। इन से यह भी पता चलेगा कि अमरीका और हिन्दुस्तान में १८९० ई० और १९२० ई० के बीच फी आदमी के पीछे निर्माण का अनुपात एक सा होने पर भी हिन्दुस्तान की यह संख्या अमरीका की संख्या की केवल १ फी सदी है। नीचे दी गई सारी अवधि में भारत में यह संख्या सिर्फ तिगुनी हो सकी है, जब कि जापान में ११ गुनी हो गई और १९३६-३८ तक इस देश के हर आदमी के पीछे निर्माण के अनुपात में हिन्दुस्तान जापान के १८९६-१९०० ई० के अनुपात का मुकाबला भी नहीं कर पाया।

जन-संख्या के हर आदमी के पीछे निर्माण का अनुपात
(१९२६-२९ ई० के भावों के अनुसार डालरों में)

	अमरीका	जर्मनी	जापान	हिन्दुस्तान
१८९६-१९०० ई०	१६०	१२०	५.७०	१.५०
१९०१-०५	२१०	१३०	८.५०	१.९०
१९०६-१०	२३०	१५०	१२	२.३०
१९११-१३	२५०	१७०	१६	२.५०
१९२१-२५	३००	१३०	३१	३.१०
१९२६-२९	३५०	१८०	४१	३.५०
१९३१-३५	२४०	१४०	४८	३.९०
१९३६-३८	३३०	२१०	६५	४.९

इन्हीं चार देशों में (क) निर्माण (ख) जन-संख्या और (ग) प्रति-

व्यक्ति के पीछे निर्माण के सालाना औसत के अनुपात में जिस तरह से बढ़ती हुई है वह इस तरह है :—

		१८९६-१९००— १९११-१३ ई०	१९११-१३— १९२६-२९ ई०	१९२६-२९— १९३६-३८ ई०
अमरीका	(क)	५.२	३.८	०.२
	(ख)	१.९	१.५	०.८
	(ग)	३.२	२.३	०.६
जर्मनी	(क)	४.०	०.९	२.२
	(ख)	१.४	०.५	०.५
	(ग)	२.५	०.४	१.७
जापान	(क)	९.०	७.६	६.६
	(ख)	१.२	१.३	१.६
	(ग)	७.७	६.२	४.९
हिन्दुस्तान	(क)	४.३	२.७	४.९
	(ख)	०.५	०.५	१.३
	(ग)	३.८	२.१	३.५

अगर हम थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि भारत की जनसंख्या और निर्माण उसी औसत अनुपात से बढ़ेंगे जैसे कि वह पिछले ४०-५० वर्षों से बढ रहे हैं, तो जापान के १९३६-३८ ई० की हर शख्स के पीछे निर्माण की संख्या तक पहुँचने के लिए हिन्दुस्तान को अभी ९३ साल लगेंगे। जापान की १९३६-३८ ई० की यह संख्या अभी स्वयं ही अमरीका के सयुक्त राष्ट्र की संख्या का सिर्फ पाँचवाँ भाग ही है।[1]

हिन्दुस्तान की खेती की हालत को जापान की खेती से मुकाबला करना अच्छा रहेगा। जापान भी भारत की तरह पूर्वीय देश है। जापान

1 लीग आफ नेशन्स का १९४५ का प्रकाशन—"उद्योगीकरण और विदेशी व्यापार।"

में भी यहाँ की तरह खेती के योग्य भूमि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हो चुके हैं। १९३० ई० में २.४ एकड़ से छोटे टुकड़े समस्त कृषि क्षेत्र के एक तिहाई (३३.८ फी सदी) थे, २.४ एकड़ से ४.९ एकड़ तक के टुकड़े ३३ फी सदी, ४.९ से १२.२ एकड़ तक के २३.१ फी सदी और १२.२ एकड़ से बड़े टुकड़े केवल १०.१ फीसदी थे। जापान की खेती जमीन के इन छोटे टुकड़ों में की जाकर भी सफल हुई है। दूसरे महायुद्ध से पहले जापान अपनी जरूरत के ८२ फीसदी चावल की खेती अपने द्वीप में ही कर लेता था। बाकी कोरिया और फारमूसा से आये हुए चावलों द्वारा पूरी कर ली जाती थी। यद्यपि मजदूरों की कमी से चावल की पैदावार में कुछ कमी दिखाई देने लगी थी; फिर भी इटली को छोड़कर जापान ही चावल की सबसे अधिक मिक-दार फी बीघे से पैदा करता था। यह उपज बर्मा, श्याम, और फ्राँसीसी हिन्द-चीन की औसतन उपज से तिगुनी अधिक थी। जापान में सिर्फ १ करोड़ ४९ लाख एकड़ों में कृषि होती है। इस देश की जमीन कुद-रती तौर पर उपजाऊ नहीं है। परन्तु गहरी जुताई की खेतीबाड़ी करके और तरह-तरह के खादों की सहायता से जापान ने अपने अनाज की उपज को ऊँचा रक्खा है। पोटाश और दूसरे रासायनिक खादों का यहाँ प्रति एकड़ में ब्रिटेन से भी अधिक इस्तेमाल होता है। जापान की खेती भी हिन्दुस्तान की तरह हाथों से ही की जाती है। खेतों के छोटे टुकड़ों के बँटवारे से इंगलैण्ड या अमरीका में इस्तेमाल होने वाली मशीनरी जापान में बेकार है। भारत में भी मशीनयुग अभी नहीं आया। फिर जापान में जनसंख्या की ऐसी समस्याएँ न उठने का क्या कारण है? जापान ने जहाँ तक हो सका है पश्चिमी वैज्ञानिक उन्नति को अपनाया है।

हमारे देश की आर्थिक हालत उस कुर्सी की तरह समझिए जो एक ही टाँग के सहारे खड़ी है। वह सहारा खेती है। जिस धरातल पर वह टाँग टिकी है वह चिकनी और फिसलने वाली है। प्रकृति

की प्रतिकूलता के झोंके और अन्धड़ चलते रहते हैं और उसको गिराने की ताक में रहते हैं। जरा भी वेग के थपेड़े को यह सहन नहीं कर सकती। इसे उद्योग-धन्धों का, देशी अथवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का कोई भी पर्याप्त आधार नहीं हैं। इस कुर्सी का आधार ताकने वालों की संख्या समयानुसार बढ़ती ही जा रही है, परन्तु यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि उसकी अकेली टाँग में काफी मजबूती है अथवा नहीं। इसके विपरीत कभी-कभी उसके चटखने की आवाज भी अकाल, दुर्भिक्ष और सब जगह फैली हुई बीमारी आदि के शब्द में सुनाई देती रहती है।

: ५ :

अनाज की तुलनात्मक उपज

क्या हिन्दुस्तान में जन-संख्या की वृद्धि के साथ-साथ अनाज की उत्पत्ति बढ़ रही है ? हमारी समस्या का खास सवाल यही है। वैसे देखा जाय तो भारत की हर वर्ग मील की जन-संख्या में अभी बहुत सघनता या वृद्धि हो सकती है। अभी लाखो-करोड़ों वर्ग मील भूमि खाली पड़ी है तथा उसमें रहने के लिए नगर और ग्राम तैयार किये जा सकते हैं। परन्तु इस नये जन-समूह के लिए भोजन न जुटाने पर तो इन्हें भूखों मरना होगा। सवाल यह है कि इस समय हिन्दुस्तान की जनसंख्या क्या इतनी ज्यादा है जितनी कि नहीं होनी चाहिए ?

वाञ्छनीय संख्या से अधिक जनसंख्या के प्रश्न का देश के सब निवासियों के प्रयत्नों के जोड़ से पैदा की गई अनाज की प्राप्य मात्रा से गहरा सम्बन्ध है। इसे जानने के लिए जरूरी है कि हमें खेती और उद्योग धन्धों की पैदावार के पूरे आँकड़े मिल सकें। हमें पैदावार के आँकड़ों की भाव-दरों की कमी-बेशी के आँकड़ों से हमेशा तुलना करती रहनी चाहिए। हमें यह जानते रहना जरूरी है कि देशी और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा मूलधन बढ़ रहे हैं या घट रहे हैं। यह भी जरूरी है कि देश में प्रचलित धन और पैदावार के बंटवारे की प्रथा की हमें अच्छी जानकारी हो।

परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि भारत में पैदावार के आँकड़े विस्तार

के साथ नहीं मिलते; जो कोई संख्याएं, अङ्क या आँकड़े मिलते भी हैं उनकी सचाई का कोई सबूत नहीं दिया जा सकता। ज्यादातर वह अनुमान ही कहे जा सकते हैं; किन्तु फिर भी उन्हीं का प्रयोग करना पड़ता है। इन अङ्कों का अर्थ लगाने में सावधानी से काम लेना चाहिए। जैसा कि बौले और रौबर्टसन ने लिखा है—"इस समय खेती की पैदावार के आँकड़े इस बात की सम्पुष्टि के लिए पर्याप्त नहीं हैं कि जनसंख्या के अनुपात में अन्न की मात्रा घट रही है या बढ़ रही है।" देशी राज्यों से मिले हुए आँकड़े तो और भी सन्देह पैदा करनेवाले हैं। स्थायी निबटारों (पर्मनेन्ट सेटलमेन्ट) के आँकड़े तो प्रायः अनुमान ही कहे जा सकते हैं।

अपनी समस्या के विचार में सब से पहले तो इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि खेती बाड़ी का क्षेत्र कितनी धीमी गति से बढ़ा है। नहरों और कुओं आदि से सिचाई के रकबे में वृद्धि हुई है। कम उपजाऊ भूमि पर कृषि आरम्भ है। उपज की नई नई किसमें जारी की गई हैं। कृषि के रकबों के आँकडो में नीचे लिखी घटाबढ़ी हुई है :—

१९०१– २	१९ करोड़		९७ लाख	एकड़
१९१०–११	२२	,,	३०	,,
१९२१–२२	२२	,,	३१	,,
१९२७–२८	२२	,,	३८	,,
१९३०–३१	२२	,,	९१	,,
१९३४–३५	२२	,,	६९	,,
१९४०–४१	२१	,,	३९	,,

१९१० ई० के बाद खेती के रकबों की वृद्धि नहीं के बराबर हुई है। १९३० ई० के बाद तो इसमें कुछ कमी भी हुई है। दूसरी लड़ाई के दौरान में और बाद अनाज का कष्ट होने पर इस रकबे को बढ़ाने की बहुत कोशिश की गयी है।

जनसंख्या के हर आदमी के पीछे जितने एकड़ भूमि बोई जाती

है उसमें क्रमश हर साल कमी होती जा रही है जो कि नीचे लिखे आंकड़ों से स्पष्ट होती है :—

१६०१	१.२८	एकड़
१६११	१.२४	,,
१६२१	१.१५	,,
१६३१	१.२०	,,

इस समय कहा जाता है कि यह संख्या सिर्फ ०.८६ एकड़ है। १६३१ की सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इन्कायरी कमेटी के अनुसार इस औसतन एकड़ भूमि की कृषि एक कृषक-परिवार को साधारणतया आराम में रखने के लिए पर्याप्त नहीं है। इन आंकड़ों के साथ भूमि के एकड़ों की उस कमी का भी, जहां कि अनाज पैदा किया जाता है, ध्यान रखना जरूरी है। ईख को छोड़कर बाकी जो खुराक के अनाज हैं उनकी खेती में हर आदमी पीछे इस प्रकार परिवर्तन हुए हैं :—

साल	१६०३–०७	०८–१२	१३–१७	१८–२२
एकड़	०.८१८	०.८५२	०,८६२	०.८२२
साल	२३–२७	२८–३२		
एकड़	०.७६२	०.७७४		

इसके उलट पश्चिम में ३.१ एकड़ भूमि की खेती-बाड़ी हर शख्स के भोजन की उचित मात्रा पैदा करने के लिए जरूरी समझी जाती है। बहुत सङ्कट काल में भी यह संख्या १.२ एकड़ से नीचे नहीं जानी चाहिए। भारत के बोये गये इस औसतन क्षेत्र को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि औसत हिंदुस्तानी को ठीक मिकदार में अनाज नहीं मिल रहा है।

जनसंख्या की वृद्धि के साथ २ उस क्षेत्र की उचित अनुपात में वृद्धि नहीं हुई, उसमें और भी कमी ही हो गई है, जिसमें कि खुराक के काम आनेवाले अनाज बोये जा रहे हैं। पिछले १०–१५ वर्षों में इसका जो हिसाब रहा है वह नीचे लिखे आंकड़ों से स्पष्ट हो जायगा। यहां

एकड़ों की संख्या ००० अंक जोड़कर पूरा करें :—

साल	१९३१-३२	१९३३-३४	१९३४-३५
चावल की कृषि का क्षेत्र	६८,७४५	६७,५०४	६६,८३२
गेहूं की कृषि का क्षेत्र	२५,२७९	२७,५५६	२५,६०८
खाद्य अनाज के सर्वयोग का क्षेत्र	१९०,५७९	१९१,६६१	१८५,९४३
ईख व मसालों सहित	२००,७५०	२०१,७९२	१९६,७४१

साल	१९३६-३७	१९३७-३८	१९४०-४१
चावल	६९,०४४	६९,४५५	६८,८४९
गेहूँ	२५,१८९	६६,६३३	२९,४४६
खाद्य अनाज	१८९,३४६	१८६,७६२	१८७,१४८
ईख मसालों सहित	२००,७६६	१९७,३२२	१९८,४४६

जहां कि खुराक के अनाज के लिए बोये गये खेती के रकबे में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ, वहां इन क्षेत्रों की पैदावार के नीचे दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि चावल की पैदावार में अपेक्षाकृत कमी हो गई। (टनो में ००० अङ्क जोड़ लें)

	३१-३२	३३-३४	३४-३५	३६-३७	३७-३८	४०-४१
चावल	२६२०१	२५७१९	२३२०९	२६६९९	२३९६९	२२१९१
गेहूँ	९४५५	९७२९	९४३४	१०७६४	९९६३	१०००९

जन संख्या की वृद्धि और खुराक के अनाज की पैदावार के क्षेत्र के मूलाङ्क (इन्डेक्स नम्बर) नीचे लिखे अनुसार हैं :—

साल	जनसंख्या = १००	खुराक के लिये अनाज का रकबा = १००
१९१५-१६	१०३	१०२.२
१९१६-१७	१०४	१०६.२
१९१७-१८	१०४	१०५.३

१६१८-१६	१०५	६०.१
१६१६-२०	१००	११०.७
१६२०-२१	६६	१०२.६
१६३०-३१	१०७	११३.६
१६३२-३३	११७	११३.४
१६३४-३५	१२०	११२.४

प्रति एकड़ पैदावार में इस प्रकार परिवर्तन हुआ है :—

(प्रति पौण्ड के हिसाब से)	१६१८-१६	१६२३-२४	१६२६-२७
चावल	८०१	७६८	८८१
गेहूँ	७०७	६६४	६६२

स्पष्ट है कि जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ हमारे देश में न तो खेती का क्षेत्र ही बढ रहा है और न आज की खेती को विशेष ध्यान देकर वैज्ञानिक ढङ्ग से उसे बोया-काटा जा रहा है। इस प्रकार प्रति एकड़ की उपज में लगातार कमी हो रही है। जमीन की उपज में लगातार कमी और जनसंख्या में लगातार वृद्धि अकाल और दुर्भिक्ष आदि की सूचना देती है तथा एक खतरनाक हालत की ओर इशारा करती है।

जैसा कि डा० ज्ञानचन्द ने कहा है १६०० ई० से खेती के क्षेत्र में ११ फी सदी और जनसंख्या में २१ फी सदी वृद्धि हुई है।

साल	जनसंख्या-मूलाङ्क	कृषि का समस्त क्षेत्र-मूलाङ्क	इस क्षेत्र की औसत-मूलाङ्क	
१६०१	१००	१००		
१६११	१०४	११३	१६०१-१०	१००
१६२१	१११	११३	१६११-२०	१०६
१६३१	११७	११६	१६२१-३०	१०८
१६३४	१२१	११८	१६३१-३४	११०

स्पष्ट है कि खेती बाड़ी जनसंख्या के अनुपात से पिछड़ गई है—और इसमें लगभग १० फी सदी का घाटा पड़ गया है।

खुराक के अनाज की कृषि का क्षेत्र जहाँ पिछड़ रहा है वहाँ आर्थिक कारणों से दूसरे पौदों की पैदावार जिनसे कि अधिक धन प्राप्ति हो सके बढ़ गई है। कृषि क्षेत्र की सब से अधिक वृद्धि सन, रेशेदार पौदे जैसे रूई आदि, जानवरों के लिए चारे आदि के क्षत्र में हुई है। खाद्यान्न और व्यापारिक पौदों की कृषि की तुलना इस प्रकार है :—

काल	खुराक के अनाजों की खेती	तिलहन की खेती	व्यापारिक पौदों की खेती
१६०१-१०	१००	१००	१००
१६११-२०	१०६	१०५	६३
१६२१-३०	१०८	६०	१०२
१६३१-४४	१०६	१२६	१२४

भारत की सारी कृषि के तीन-चौथाई से अधिक भाग में खुराक के लिए अनाज पैदा किये जाते हैं। फिर भी १६०० और १६२४ के मध्य जहाँ जनसंख्या २१ फी सदी बढ़ी, वहाँ खाने योग्य अनाज की पैदावार सिर्फ ६ फी सदी बढ़ी।

पहले महायुद्ध के पूर्व भारत दूसरे देशों को खाद्यान्न भेजा करता था। उस निर्यात में लगातार कमी होती गई है। इसका कारण जहाँ बाहर के देशों की माँग में कमी और देश में खेती की उपज के भावों का गिरना था, वहाँ देश की अपनी बढ़ती हुई खपत भी था। देश में अनाज की जरूरत में लगातार उन्नति हुई है। जहाँ देश से अन्न का बाहर जाना कम हुआ है वहाँ बाहर से अन्न अधिक मिकदारमें आना आरम्भ हो गया है। इस आयात और निर्यात के आँकड़े निम्न हैं:—

(टन)	पहले महायुद्ध से पूर्व	युद्ध के समय	युद्ध के बाद	१६३४-३५	१६३५-३६
निर्यात	४४.१	३१.४	२०.१	१७.६	१५.५

आयात १५,००० •३६,००० १,३६,००० ४,१६,००० २,३६,०००

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में अन्न की मात्रा पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। भारत में माल्थ्यूस के सिद्धान्त लागू हैं । यहाँ की अर्थव्यवस्था जड़ हो गई है और कुद-रत को जनसंख्या कम करने के लिए अपने अमानवीय साधनों का उपयोग करना पड रहा है।

विचार के लिए पञ्जाब का मामला ही लें । १९२१ और १९३१ में पंजाब की जनसंख्या १४.६ फी सदी बढ़ी, जब कि खेती के रकबे में सिर्फ २ फी सदी वृद्धि हुई। खेतो के मालिक किसानों और दूसरे किसानों को सख्या में २४.७ फी सदी उन्नति हुई। इससे स्पष्ट है कि किस तेजी से खेती करने वालों को जनसंख्या बढ़ी है। पञ्जाब सरकार ने खेती विभाग के डाइरेक्टर की १९३२-३३ ई० की सालाना रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए कहा है—"इस बात को लोग नहीं समझते कि यद्यपि पिछले १० वर्षों में अक्सर सभी तरह की खेती में वृद्धि हुई है फिर भी पैदावार की वृद्धि जनसंख्या की वृद्धि के साथ कदम नहीं मिला सकी।" पञ्जाब की सी अवस्था ही देश के दूसरे प्रान्तों में भी है।

जहाँ हमें हिन्दुस्तान की कृषि पर, जन-संख्या की समस्या का विचार करते हुए ध्यान देना है, वहाँ यह भी देखना है कि क्या देश के व्यापार, उद्योगधन्धों आदि में उन्नति हो रही है? क्या इन साधनों से देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ रही है जिससे कि बढ़ती हुई जनसंख्या का पालन-पोषण हो सके? क्या जनसंख्या का इन धन्धों आदि में खप जाने का अनुपात बढ़ रहा है और इस प्रकार लोगों के लिए नये-नये काम-धन्धे निकल रहे हैं?

हिन्दुस्तान में जरूरी अनुपात में यह नहीं हो रहा है। नीचे के आँकड़ों में व्यापार धन्धों में जुटी हुई जनता का अनुपात दिखाया गया है जो कि क्रमशः कम ही हो रहा है :—

धन्धा	१९११	१९२१	१९३१
व्यापार	८.१०	८.०४	७.९१
उद्योग	१७.५०	१५.७१	१५.३५
खुराक के अनाज सम्बन्धी उद्योग	२.१३	१.६५	१.४७
वस्त्र सिलाई आदि का उद्योग	३.७५	३.४०	३.२८

इसका मतलब यह हुआ कि उद्योग धन्धों में लगे हुए लोगों का अनुपात घट रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या को खपाने के लिए हमारे देश में उद्योग धन्धों में इस अनुपात से उन्नति नहीं हो रही है कि वह प्राप्य कर्मचारियों को स्थान दे सकें। कारखानों में देश की जनता को जो काम पर न लगाये जाने का अनुपात घट रहा है, वह नीचे लिखे आँकड़ों से भी स्पष्ट हो जायगा :—

१९११—१९३१ ई० में फी सदी परिवर्तन

जनसंख्या	+१२.१
कार्य योग्य जनसंख्या	+४.०
उद्योग धन्धों में लगी जनसंख्या	−१२.६
कार्य योग्य जनसंख्या में से उद्योग-धन्धों में लगी जनसंख्या का अनुपात	−९.१
उद्योग धन्धों में लगी जनसंख्या का समस्त जनसंख्या से अनुपात	−२१.८

जैसा कि ऊपर कहा गया है "बढ़ रही जनसंख्या उद्योग धन्धों में बिलकुल ही नहीं खप रही है।" वैसे इस अनुपात को छोड़कर देखा जाय, तो हिन्दुस्तान में उन लोगों की जनसंख्या जो आधुनिक धन्धों या खेती के लिए जरूरी उद्योग धन्धों में लगे हुए हैं, सम्भवतः संसार भर में सबसे अधिक है। हिन्दुस्तान में इनकी संख्या १ करोड ५३ लाख (१९३१), संयुक्त राष्ट्र अमरीका में १ करोड़ ४१ लाख (१९३०) जर्मनी में १ करोड़ १७ लाख (१९३३), इंग्लैण्ड और वेल्स में ६०

लाख (१९३१) और जापान में २१ लाख (१९३०) है[१]।

उद्योगीकरण की चोटी पर स्थित इन देशों में इस संख्या के अपेक्षाकृत कम होने का अर्थ केवल एक ही है कि भारत में उद्योगीकरण पश्चिम की राह पर नहीं हो रहा है। उद्योगीकरण से जो लाभ होते हैं, हमें वह प्राप्त नहीं हो रहे हैं और हमारा उद्योगीकरण वैज्ञानिक ढंग का नहीं है। इन आँकड़ो से यह भी पता चलता है कि भारतीय उद्योगीकरण अभी कितनी आरम्भिक अवस्था में है। जैसे-जैसे यह वैज्ञानिक मार्ग पर अग्रसर होता जायगा, हम इतनी जनसंख्या को काम पर नहीं लगाये रख सकेंगे। इनके लिए तो उद्योगीकरण का क्षेत्र सभी दिशाओ में बढ़ाना चाहिए।

खेती मे हमारी बढ़ती जनसंख्या इतना ध्यान क्यों नहीं दे रही है, जिससे कि आवश्यक मात्रा में अनाज पैदा हो सके? कुछ हद तक इसका कारण खेती की उपज के गिरते हुए भावों में छिपा हुआ है। १९२८ ई० से इन भावों में कमी ही होती आ रही है। हमारे पूँजीवादी समाज के अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार गिरते हुए भावों की चीज का उत्पादन कम हो जाना जरूरी है, क्योंकि चीज का उत्पादन जरूरत पूरी करने के लिए नहीं, बल्कि लाभ उठाने के लिए किया जाता है। भाव घटते रहे, तद्नुसार उपज में कमी होती गई है; किन्तु इस काल में जनसंख्या की वृद्धि तो बिलकुल नहीं रुकी। इन भावों की अवनति का चित्र इस प्रकार है:—

साल	अंग्रेजी भारत के मूलाङ्क (मासिक औसत)
१९१३	१००
१९२८	१४५
१९२९	१४१

---

[१] लीग आफ नेशन्स द्वारा प्रकाशित आँकड़ों की पुस्तक—१९३३-३४ ई०।

१६३०	११७
१६३१	६६
१६३२	६१
१६३३ (जनवरी) ई०	८८

खेती की उपज के भाव गिरने से वह मुनाफे की चीज नहीं रह जाती और किसान ऐसी चीजें बोने लगते हैं जिनसे उन्हें अधिक लाभ हो सके। इण्डियन सेण्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी (१६३१ ई०) के अनुमान के अनुसार १६२८ के भावों से खेती की सारी उपज का मूल्य १२ अरब रुपये के लगभग था। १६२८ से दूसरे महायुद्ध के आरम्भ होने तक भावों के गिर जाने से इसमें करोड़ों रुपये की कमी हो गई। उधर अमरीका के संयुक्त राष्ट्र में खेती पर गुजर करने वाली साढे तीन करोड़ जनसंख्या हर साल ३० अरब रुपये के अनाज पैदा करती है।

उद्योगधन्धों पर बसर करनेवाली जनसंख्या का अनुपात १६०१, १६११, १६२१ और १६३१ में क्रमशः १५.५, ११.१, १०.३ और ६.७ फी सदी था। इसी तरह खान की पैदावार में भी अवनति हुई है। १६२१ ई० में जहां २ करोड़ ५२ लाख पौण्ड की कीमत की पैदावार हुई थी, वहाँ १६३१ ई० यह घटकर १ करोड़ ७७ लाख ही रह गई। यह सब आँकड़े इस बात की ओर ही इशारा करते हैं कि हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति में उन्नति नहीं हो रही है और न अनाज की मात्रा में ही उचित अनुपात में वृद्धि हो रही है। नैशनल प्लैनिङ्ग कमेटी की जनसंख्या सम्बन्धी उपसमिति के अनुसार देश की खाद्य सम्बन्धी आवश्यकता पूर्त्ति में १२ फी सदी की कमी है।

सर विश्वेश्वरय्या ने प्रति वर्ष अनाज की कमी का अनुमान २॥ से ३ करोड़ टन तक लगाया है। उनका हिसाब इस तरह है:—

देश में चावल की उपज	३ करोड़ ३२ लाख टन
,, गेहूँ ,,	६३ लाख टन

,, अन्य भिन्न २ खाद्य	१ करोड़ ८४ लाख टन
जोड़ लगभग	६ करोड़ टन
इस में से बीज और चारा घटायें	१ करोड़ टन
बाकी रहा	५ करोड़ टन

उनके मतानुसार सब जनसंख्या के लिए ७॥ करोड़ से ८ करोड़ टन अनाज की जरूरत है। इस प्रकार देश में २॥ करोड़ से ३ करोड़ टन की कमी बाकी रह जाती है। इसका अर्थ यह है कि हमारे देश की जनता को अनाज की उचित मात्रा नहीं मिल रही है। कम भोजन खा कर ही इतनी बड़ी संख्या जीवित है। अनुमान लगाया गया है कि हमारी जनसंख्या के ३० फीसदी भाग को कम और शक्ति–हीन खाना मिल रहा है।

अपनी प्राइसिस इन्क्वायरी रिपोर्ट में के० एल० दत्त ने लिखा है कि १८९४ ई० और १९१२ ई० में जन संख्या के अनुपात से खुराक के अनाज की पैदावार का अनुपात पिछड़ गया है। १९२० ई० में श्री दुबे के विचारों के अनुसार भी हिन्दुस्तान में अनाज की बहुत बड़ी मात्रा में कमी पाई जाती थी। राधाकमल मुकर्जी का कहना है कि अनाज की यह कमी १२ फीसदी है। पी० के० बहल के कथनानुसार १९१३-१४ ई० से १९३५-३६ ई० तक जब कि जनसंख्या में लगभग १ फीसदी के हिसाब से वृद्धि हुई, कृषि की उपज की वृद्धि केवल ०.६५ फीसदी रही। इसी प्रकार सी० एन० वकील और एस० के० मुरञ्जन ने भी ऐसे ही विचार और अनुमान व्यक्त किए हैं। डा० ज्ञानचन्द ने लिखा है कि "खेती में यह मान लेने के काफी कारण हैं कि कृषि-क्षेत्र पर जनता का दबाव बढ़ता गया है। लेकिन कृषि-क्षेत्र के विस्तार और उपज में उन्नति हमारी जनता की आवश्यकता से कहीं पीछे रह गई है।" उद्योग धन्धों, व्यापार और राष्ट्रीय-धन के विकास के विषय में लिखते हुए उन्होंने कहा है कि "इसमें सन्देह है कि इन

से हमारी राष्ट्रीय आय में जो थोड़ी बहुत वृद्धि हुई है उसे जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव से कुछ सुविधा मिली है।" सर जान मेगा और श्री कार साण्डर्स दोनों का विश्वास यही है कि भारत में अन्न की जितनी आवश्यकता है उसकी उतनी मात्रा यहाँ प्राप्य नहीं है। डा० डब्ल्यू० आर० ऐक्रायड के विचार में जो-जो भी सबूत मिल रहे हैं वह इसी बात की ओर इशारा करते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि के उचित अनुपात में कृषि क्षेत्र में वृद्धि नहीं हो रही और इस प्रकार इन दोनों के अनुपात में क्रमश. अधिक अन्तर होता जा रहा है।

यहाँ श्रीराधाकमल मुकर्जी के विचार कुछ विस्तार से लिखने अनुचित न होंगे। उन्होंने कहा है कि "जनसंख्या और प्राप्य अन्न के मूलाङ्कों के भेद में धीरे-धीरे वृद्धि होती जा रही है और इससे स्पष्ट है कि खाद्य स्थिति उलझती जा रही है।" उन्होंने यह भी लिखा है कि सस्ते और घटिया अन्न की कृषि बढ़ती जा रही है। उनके विचार में १९३१ में, उस समय की कृषि और अन्न की स्थिति के अनुसार भारत में जनसंख्या केवल २९ करोड़ १० लाख होनी चाहिए थी, जब कि वास्तव में यह ३५ करोड़ ३० लाख थी। उन्होंने इसी युक्ति से अनुमान किया है कि यदि हम यह मान लें कि शेष व्यक्तियों को पूरी और उचित मिकदार में अन्न मिल रहा था तो उन औसतन मनुष्यों की सख्या जिन्हें कि भोजन बिलकुल ही प्राप्त नहीं हो रहा था, ४ करोड़ ८० लाख थी और उष्णता (कैलरी) की गणना में अन्न की कमी ४१ अरब ६० करोड़ कैलरी थी। इनके तर्क के अनुसार "भारत की खाद्य स्थिति, अन्न चाहने वालों की संख्या और अन्नोत्पत्ति के अनुपात में भेद तथा प्राप्य अन्न में पोषक तत्त्वों का न होना—दोनों ही दृष्टियों से बिगड़ती जा रही है।"

: ६ :

हिन्दुस्तान की अधिक जनसंख्या

हिन्दुस्तान की जनसंख्या की समस्या ऐसी है जिसके बारे में बिलकुल निस्सन्देह आँकड़े नहीं मिलते। ऐसी हालत में दावे के साथ कुछ भी कहा नहीं जा सकता। जो निशानात और इशारे मिलते हैं उन्हीं के अनुसार कुछ मोटे-मोटे नतीजे निकाले जा सकते हैं।

प्रोफेसर डी० जी० कार्वे और डाक्टर पी० जे० टामस के तर्क और धारणाओं के अनुसार हिन्दुस्तान में आनुपातिक जनसंख्या अधिक नहीं है। डाक्टर बी० जे० घाटे के विचार में भी खेती पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा नहीं है। तदनुसार सर्वसाधारण जनता के रहन-सहन के स्तर में कोई हानि नहीं हुई। इन विचारकों ने अपनी धारणा की पुष्टि के लिए प्राप्य आँकड़ों का प्रयोग किया है। फिर भी उन्होंने यह माना है कि भारत की औसतन जनता गरीबी से पिस रही है और इस दरिद्रता के इन्होंने अलग-अलग कारण दरसाए हैं। उदाहरण के रूप में डा० टामस ने लिखा है कि "देश में उपज की जो प्रणाली है उसमें अन्याय युक्त बँटवारे की प्रथा से बाधा हो रही है।"

ऐसे विचारकों को, जिनके मतानुसार भारत में जनसंख्या का आनुपातिक आधिक्य नहीं है, उत्तर देते हुए द्वितीय 'अखिल भारतीय जनसंख्या सभा' में सर जहाँगीर सी० कोयाजी ने कहा था—"जो यह कहते हैं कि हिन्दुस्तान में जनसंख्या उचित अनुपात से अधिक नहीं है, उन्हें हमारे रहन-सहन के ढङ्ग के नीचे दर्जे, औसतन किसान की खरीदने की कम शक्ति, देश के भौतिक जीवन में आनन्द की कमी, कृषि-भूमि के प्रतिदिन छोटे-से-छोटे होते हुए टुकड़ों का भय तथा इस

बात का कि हमारे देश में किसान समाज को वर्ष भर करने के लिए कोई काम क्यों नहीं जुटता, आदि का उत्तर देने में बहुत कठिनता का सामना करना पड़ेगा।" साधारणतया यही चिह्न किसी देश में जनसंख्या के आधिक्य के सूचक हैं। भारत में और कितनी ही दूसरी बातों के साथ-साथ यह सब मौजूद हैं।

यह मान लेने के लिए कि भारत में जनसंख्या की अधिकता है, जो पहली बात हमारे सामने आती है वह भारत में अनाज की अपेक्षाकृत कमी है। अनाज की कमी जनता को ठीक मिकदार में खाना न मिलने में, उनकी नीचे दर्जे की जीवन शक्ति में, रोगों का सामना करने की अयोग्यता में और सुविस्तृत भूख और अकाल की सी दशा में स्पष्ट हो जाती है। जो कुछ भी आँकड़े मिलते हैं, उनसे यही पता चलता है कि देश में अन्न पर्याप्त मात्रा में नहीं है तथा जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ इस कमी में और भी वृद्धि होती जा रही है। चावल और गेहूँ की उपज में, जो आम लोगों के भोजन हैं, जनसंख्या के बढ़ते अनुपात से वृद्धि नहीं हो रही है वरन् इनके कृषि-क्षेत्रों में और उपज में गत वर्षों में कमी ही हुई है। सस्ते पौदों की खेती बढ़ रही है जिससे भारतीय जनता के लिए प्राप्य खुराक के अनाज में ताकत पहुँचाने की मिकदार कम होती जा रही है। जौ, ज्वार, बाजरा और चरी आदि की पैदावार प्राय दुगनी हो गई है। ऐसे अन्नों की अधिकाधिक उपज से हिन्दुस्तान की जनता की समस्या और भी उलझती जायगी।

खेती के हर एकड़ की उपज में अनाज की जो कमी होती जा रही है उससे स्पष्ट है कि जो जमीन अब तक बोई नहीं जा रही थी, उसे अनाज की बढ़ती हुई मांग के दबाव से अधिकमात्रा में काम में लाया जाने लगा है। व्यापारिक पौदों की पैदावार में फी एकड़ वृद्धि हुई है। इस से यह भी स्पष्ट है कि घटिया जमीन (मार्जिनल लैंड) का इस्तेमाल सिर्फ अनाज की उपज के लिए ही किया गया है।

डा० ज्ञानचन्द ने लिखा है कि "इसका मुख्य कारण कि जिन्दगी इतनी सस्ती और मौत इतनी मामूली बात क्यों है, यही है कि प्राप्य अनाज की मात्रा बहुत ही कम है।" सर जान मेगा ने ऐसे ही विचार प्रगट करते हुए बताया है कि भारतीय जनसंख्या का लगभग तीन चौथाई भाग खुराक की ठीक मिक़दार नहीं पाता।

भारत में जनसंख्या ज्यादा होने का सबूत इस बात से भी मिलता है कि हमारे देश में इस संख्या की रोकथाम के लिए मानव-कृत साधनों का प्रयोग नहीं होता। यहां माल्थ्यूस द्वारा वर्णन किये गये प्रकृति के निश्चयात्मक उपाय ही प्रचलित हैं। स्त्री-सहवास से दूर रहना और ब्याह की आयु को बढ़ाना आदि मनुष्य के बनाये उपाय हैं; किन्तु यह दोनों भारत में बिलकुल ही अनुपस्थित हैं। यहां अपेक्षाकृत बहुत छोटी आयु में विवाह हो जाता है और विवाह के बाद ही सन्तति उत्पादन का कार्य आरम्भ हो जाता है। विवाहित अवस्था में भी गर्भ रोकने के नये साधनों का उपयोग हमारे समाज में न तो अच्छा ही समझा जाता है न उसके विषय में आम जनता में जानकारी और अपनाने की योग्यता ही है।

प्रकृति इस बढ़ती हुई संख्या को किस प्रकार घटाती रहती है, यह प्रत्यक्ष ही है। भारत में अकाल, दुर्भिक्ष और छूतछात के रोगों के बराबर आक्रमण होते रहना साधारण बात हो गई है। कुदरत की क्रूरता को भारत में पूरी विजय है, जहां कि पश्चिम में मनुष्य ने इस पर भले प्रकार रोक थाम करके इसे काबू में कर लिया है।

जनसंख्या के अधिक होने का एक सबूत यह भी है कि इस देश में इतनी मौतों, विशेष कर शिशुओं की मृत्यु संख्या का, आधिक्य है। जन्म के उपरान्त शीघ्र ही अथवा कुछ वर्षों के अन्दर हो जाने वाली मृत्यु को हम लापर्वाही की दृष्टि से देखते हैं और दुर्भाग्य की बात कह कर टाल देते हैं जब कि पश्चिमी देश इसे सामाजिक अभिशाप समझ कर इसके अनुपात को घटाने की लगातार कोशिशें करते रहते हैं। हम

इतने भाग्यवादी हैं कि मृत्यु को दूर करने के उपाय ढूंढने का प्रयत्न करना भी उचित अथवा सार्थक नहीं समझते।

खेती की जमीन का जो निरन्तर सूक्ष्म विभाजन होता जा रहा है और तदनुसार कृषि जो अर्थ-हीन और श्रम को विफल करने वाली होती जा रही है, उससे हमारी जनसंख्या की अधिकता साफ सामने आ जाती है। इस प्रकार की जमीन का स्वामित्व देश के लिए काम का होने की अपेक्षा देश का बोझ रूप बन गया है। हम सारे देश में फैली इस कुदशा को रोकने की कोई सुसंगठित योजना अभी तक नहीं बना पाए।

देश भर में जो दरिद्रता, बेकारी और भूख फैली हुई है उससे भी जनसंख्या की अधिकता प्रकट होती है। भारतीय जनता का जो ८७ फीसदी भाग ग्रामों में रहता है उसके रहन-सहन का ढंग नीचे से नीचा है—उन्हें हमेशा भूख और नङ्गापन सहना पड़ता है। एक आदमी की औसत आय इतनी कम है कि ताज्जुब होता है। उनकी क्रय-क्षमता (पर्चेज़िंग पावर) शून्य के बराबर है और वह महज जीने के अलावा आराम के कुछ भी साधन नहीं जुटा सकता। सुखमय जीवन किसे कहते हैं, यह उसे मालूम ही नहीं।

जी. फिण्डले शिरास के अनुमान के अनुसार हिन्दुस्तान में हर शख्स की औसत आमदनी इस प्रकार घटती रही है:—

साल	रुपयों में प्रति व्यक्ति की आमदनी
१९२३	११७
१९२५	११४
१९२७	१०८
१९२९	१०९
१९३१	९३
१९३२	५८

दूसरे महायुद्ध शुरू होने से पहले खेती के भावों में जो अवनति हुई थी, उसका विचार करते हुए सर एम० विश्वेश्वरय्या के अनुसार औसत आमदनी केवल २५ रुपये रह गई थी। हिन्दुस्तान की यह आय सभी सभ्य देशों से पिछड़ी हुई है:—

देश	साल	हर शख्स की पौण्डों में आय
भारत	१९३१	५
इङ्गलैण्ड	१९३१	७६
अमरीका	१९३२	८९
जापान	१९२५	१४

खेती और उद्योग धन्धों के संगठन में इस देश में जो अव्यवस्था है उसका विचार करते हुए और किस परिणाम की आशा की जा सकती है! हमारी आय इस संख्या से अधिक कैसे हो सकती है जब सर विश्वेश्वरय्या के अनुमान में जापान में प्रति एकड़ की उपज की कीमत १५० रु० और हिन्दुस्तान में युद्ध से पूर्व साधारण स्थिति के दिनों में नहरों की सिंचाई सहित सब क्षेत्रों को मिला कर प्रति एकड़ की उपज का मूल्य केवल २५ रु० आंका गया है।

जैसा कि प्रो० ब्रजनारायण ने कहा है—"हो सकता है कि संकीर्ण अर्थों में भारत की जनसंख्या को अधिक न कहा जा सके पर जो हालात मौजूद हैं उनके अनुसार तो भारत में जनसंख्या का आधिक्य है और यहां माल्थ्यूस के कहे हुए नियम जारी हैं।" प्रायः सभी अर्थ-शास्त्रियों के ऐसे ही विचार हैं। इस विषय के विशेषज्ञ डा० ज्ञानचन्द के कहने के अनुसार तो इस अधिकता में कोई शक या इसके विषय में दो रायें नहीं हो सकतीं।

अर्थशास्त्रियों में कार्र साण्डर्स को जो इज्जत हासिल है, उसे ध्यान में रखते हुए हम उनके विचार को यहां देना उचित

समझते हैं। वह कहते हैं कि "सब निशान इसी नतीजे की ओर इशारा करते हैं कि हिन्दुस्तान में, अथवा इसके कुछ भागों में निश्चय ही, जनसंख्या अनुपात से ज्यादा है। ऐसे निशान भी प्राप्त हैं जिन से पता चलता है कि स्थिति में कुछ सुधार नहीं हो रहा है, बल्कि वह बिगड़ती ही जा रही है।"[1]

---

१ वर्ल्ड पापुलेशन।

: ७ :

समस्या और उसका समाधान (क)

जैसा कि कहा गया है, हमारे देश की जनसंख्या की समस्या देश की समस्याओं मे सब से ज्यादा उलझी हुई है। इसका विश्लेषण करके हमने इसके सब पहलुओं पर विचार किया है। अब सोचना यह है कि इसे सुलझाने के लिए किस दिशा में किस तरह कदम उठाया जाय। इस विषय में आखिरी नतीजे पर पहुँचना बहुत कठिन है। इस समस्या का सामना करने के लिए तो हमें अपने वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संगठन को नये सिरे से गढ़ना होगा और आजकल जिस नीति और हितों के अनुसार काम होते हैं उनको बदल-डालना होगा।

इस समस्या को हल करने के दो रूप हैं (१) वह जो लोग खुद कर सकते हैं-यानी सन्तान पैदा करने के बारे में (२) वह जिनके विषय में हमें पर्याप्त प्रयत्न करने पड़ेंगे—जैसे ज्यादा अनाज की पैदावार, राष्ट्रीय धन का न्यायोचित बंटवारा, अच्छी सफाई, उदार सामाजिक नियम और आजादी की भावना जो नये जीवन की पुकार ला सके। इस समस्या का एक दूसरा भेद 'व्यक्तियों की गणना और गुण' दोनों की उन्नति के रूप में हो सकता है।

खुराक का अनाज ज्यादा उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि अधिक से अधिक जमीन को खेती के काम में बरता जाए और सब कृषि सार पूर्ण हो। जिस जमीन का अब खेती के काम में प्रयोग हो रहा है उसके रकबे में बहुत वृद्धि होनी सम्भव नहीं है। आंकड़ों में ऐसी जमीन दीख पड़ती है जो खेती करने के योग्य है, और जिसे व्यर्थ ही छोड़ दिया बताया जाता है। परन्तु यह भूमि कृषि के लिए बरती

जा सकेगी, इसमें सन्देह है। सारपूर्ण खेती के लिए तो अभी ठोस कदम नहीं उठाये गए। ऐसा क्यों नहीं हुआ, इसके कई कारण हैं। सिंचाई आदि की सुविधाएँ अभी व्यापक रूप में प्राप्य नहीं हैं। सिर्फ वर्षा पर तो आश्रित नहीं रहा जा सकता। सरकारी सिंचाई से समस्त कृषि क्षेत्र का केवल आठवाँ भाग ही प्रभावित है। जिन छोटे-छोटे टुकड़ों में भारतीय किसान खेती बारी करता है वह गहरी जुताई की खेती के काम की नहीं हैं। इसके साथ ही एक औसत देहाती का कर्ज और उसका अनजानपन खेती को वैज्ञानिक ढङ्ग पर किये जाने में बाधक हैं। इसके अतिरिक्त साधारण किसानों में खरीदने की शक्ति कम होने के कारण वह आवश्यक कृषि-साधनों को मोल भी नहीं ले सकते।

यह भी जरूरी है कि अनाज उपजाने की खेती की ओर से लापरवाही करके व्यापार के लिए लाभदायक जिन पौदों की खेती की ओर किसान का ध्यान आकर्षित हो रहा है उस पर कुछ रोक-थाम हो। हमने देखा है किस प्रकार खुराक के अनाज के रकबे में कमी होती जा रही है। उसके खिलाफ़ नीचे लिखे खेती के रकबे के आँकड़ों पर ध्यान दें:—

(यहां दिये गये आँकड़ों में ००० और जोड़कर उतने एकड़ समझें)

	१९३१-३२	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३६-३७
समस्त तिलहन	१४,१२३	१५,५२१	१५,५०१	१५,५९५
सन	१८४५	१८७०	२४१४	२५४०
चारा	९३८९	९७२८	९९७२	१०५७३
	१९३७-३८	१९३८-३९	१९४०-४१	
समस्त तिलहन	१६,९८५	१६,१८७	१६,७०१	
सन	२८४७	३१२५	४२९६	
चारा	१०४०१	१०३७१	१०४९६	

खुराक के अनाज की पैदावार में एक अच्छी योजना के अनुसार उन्नति होनी चाहिए। इनके भावों को इतना नहीं गिरने देना चाहिए कि किसान इनकी खेती छोड़ने लगें। अनाज की खेती की उपज के भावों पर सरकारी रोक-थाम रहना उचित है।

यह जरूरी है कि जमीन का छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटना रोका जाय। यही नहीं, उलटे छोटे-छोटे खेतों को मिलाकर चकबन्दी कर दी जाय। इस बँटवारे का मूल कारण हैं पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे के कानून जिनमें एकदम परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उनमें जरा भी छेड़छाड़ करने से समस्त भारतीय सामाजिक व्यवस्था डाँवाडोल हो सकती है। डा० ज्ञानचन्द ने कहा है कि "छोटे-छोटे टुकड़ों के इकट्ठे कर देने में सबसे अधिक कठिनाई हिन्दुओं या मुसलमानों के वारिसाना कानून ही अड़चन नहीं डालते किन्तु यह बात कि हमारे देश की जनता आम अपने जीवन-निर्वाह के लिए अकसर खेती पर ही आधार रखती है।" इस हालत में वारिसाना जायदाद के बँटवारे के कानूनों में संशोधन करने का अर्थ होगा एक बिना जमीनवाले कृषक समाज को जन्म देना। भारत में हमारा आर्थिक जीवन अभी इतना विस्तृत नहीं हो सका कि इस प्रकार जमीन से रहित हो गए लोगों को हम अलग-अलग धन्धों में लगा सकें।

पश्चिम में लैन्सलाट हॉगबेन के शब्दों में "रासायनिक खाद, तालाब आदि से खेती और खेती की पैदावार बढ़ाने की विद्या से अनाज पैदा करने के साधनों में जमीन का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया।" हमने इस देश में खेती के इन वैज्ञानिक तरीकों को अभी अपनाया ही नहीं है। खाद के प्रयोग, किसी भी तरह की मशीनरी और वानस्पतिक-उत्पत्ति-विज्ञान की जानकारी यहाँ के लोगों को न के बराबर है।

जनसंख्या के लिए अनाज की काफी मिकदार पैदा करने के लिए जरूरी

छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर सामूहिक रूप में खेती करें। इसके बारे में अधिक-से-अधिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इस मिली-जुली खेतीबारी को जारी रखने के लिए किसानों की पारस्परिक सहायक सभाओं (कोआपरेटिव सोसायटीज़) का निर्माण होना चाहिए।

इस विषय में यह कठिनाई पेश आयगी कि अशिक्षित किसान इन सभाओं की उपयोगिता किस प्रकार समझ सकेंगे और किस सीमा तक इनसे सहयोग करने को उद्यत होंगे। किसी भी दिशा में बढ़ने की कोशिश करने पर अज्ञान, अशिक्षा की गहरी खाई राह में बाधा बनती है। अन्त में इस सारी स्थिति से बचने का केवल एक ही मार्ग सूझता है कि इस अज्ञान और अशिक्षा की खाई को पाट दिया जाना चाहिए। यह खुद ही एक कितनी भारी कोशिश है यह बात अशिक्षित व्यक्तियों का अनुपात ध्यान में रखकर सहज में समझ में आ जायगी।

हिन्दुस्तान में अनाज की कमी और जो अन्न मिलता भी है उसमें ताकत देने कमी, को हटाने के लिए जरूरी यह है कि अलग-अलग प्रकार की उपज की खेती की योजना हमारे यहाँ सब सोच-विचार कर लेने के बाद चालू की जाये। घटिया अनाज पैदा करने के सवाल हल करने के लिए बारी-बारी खुराक के अनाज और बिना खुराक यानी व्यापारिक उपज की खेती की योजना तैयार होनी चाहिए। किन्तु जब तक हिन्दुस्तानियों का इतना बड़ा अनुपात खेती पर ही टिकता रहेगा, हमें अपनी आर्थिक—अनाज या खेती सम्बन्धी—कठिनाइयों से पीछा छुड़ाना कठिन होगा। वाञ्छनीय तो यह है कि भारतीय आर्थिक जीवन में नये-नये धन्धे जुटाए जायँ। कई विचारकों के मत में एकनिष्ट होकर हमें केवल उद्योगीकरण की ओर ही बढ़ना चाहिए और इससे ही हमारी समस्या का हल हो जायगा। यह नहीं सोचा जाता कि हमारी जनसंख्या के बढ़ने का जो अनुपात है उसमें उद्योगीकरण से लोगों की सहायता नहीं मिल सकती। जैसे उद्योगीकरण

बढ़ेगा असंगठित उद्योगधन्धे और दस्तकारियों आदि को एक ऐसी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा जिसके विरुद्ध वह टिक न सकेंगे और इनमें लगी हुई हमारी जनता के ६ फी सदी भाग को बेकार हो जाना पड़ेगा। खुद बड़े-बड़े कारखानों में अधिक वैज्ञानिक ढंग बरते जाने से कितनी ही संख्या में मजदूर बेकार होने लगेंगे। १६२३-२४ई० से १६३७-३८ ई० तक जब कि वस्त्र निर्माण में १५० फी सदी उन्नति हुई और सूती धागे के निर्माण में ७५ फी सदी वृद्धि हुई, उन मजदूरों और कार्यकर्त्ताओं में, जो इस व्यवसाय में लगे थे, केवल २८ फी सदी वृद्धि हुई। यह प्रवृत्ति समय के साथ-साथ और भी प्रमुखता पाती जायगी। इसके अतिरिक्त उद्योगीकरण के लिए एक वास्तविक कठिनता हमारी आम जनता की खरीदने की शक्ति कम होने से भी पैदा होती है। अगर बड़े-बड़े कारखानों और धन्धों की उपज खरीदने लायक हमारे पास पैसा ही नही तो उस उपज का क्या होगा? इस सम्बन्ध में यह जान लेना रुचिकर होगा कि १६२६-२६ ई० में अनाज के अलावा देश के बाहर से मँगाई गई और स्वयं देश के कारखानों में बनाई गई बाकी सब तरह की चीजों की सालाना खपत की कीमत (सब तरह के निर्माण सहित) जब कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में हर आदमी के पीछे २५० डालर थी, हिन्दुस्तान में केवल ३ डालर थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि औसत हिन्दुस्तानी की खरीदने की शक्ति की हद कहाँ तक है। कहा जासकता है कि अभी देश में कारखाने अथवा उद्योगधन्धे हैं ही कितने और वे कितना माल बना पाते हैं। परन्तु यह सच है कि अगर वस्तुओं की माँग हो तो आयात से अथवा देश में स्वयं ही इन वस्तुओं के निर्माण से यह माँग पूरी हो जानी निश्चित है। इस विचार में हम लड़ाई से पैदा चन्द रोज की खुशहाली या चीजों की कमी पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। यह सब विचार तो शान्ति के साधारण दिनों से सम्बन्ध रखते हैं। देश के व्यापार का विकास करने अथवा उद्योगधन्धों की उपज की माँग पैदा करने के लिए जरूरी है

कि एक बड़ी मात्रा में हमारे समूचे राष्ट्रीयधन की उन्नति हो और बँट-वारे को किसी न्याययुक्त तरीके से हर शख्स की औसत आय बढ़े। दूसरे महायुद्ध से पहले यह अनुमान किया जाता था कि उन सब चीजों के देश में ही बना लेने से जो कि उस समय बाहर से मंगाई जाती थीं, हर आदमी के पीछे निर्माण शक्ति में सिर्फ ४ रुपये के हिसाब से वृद्धि होगी।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तान का कोई भी हितैषी उद्योगीकरण का विरोध नहीं कर सकता। जरूरत है कि इस दिशा में बढ़ा जाय। लेकिन यह समझ लेना जरूरी है कि इसमें जनसंख्या की समस्या न हल हो सकेगी। दूसरी ओर कुछ विचारकों का कहना है कि सिर्फ हाथ के धन्धों पर ही जोर देना भी समयोचित नहीं है। इनसे तो केवल स्थानीय और अस्थिर सहायता ही मिल सकेगी और जैसे-जैसे उद्योगीकरण में उन्नति होगी, छोटी दस्तकारियाँ उखड़ती जायँगी।

"खेती इस समय भी भारत का मुख्य धन्धा है और सदा रहेगा। हम लोगों की खुशहाली या गरीबी इसके ही विकास पर टिकी हुई है।" (डा० ज्ञानचन्द)। पर जरूरत इस बात की हैं कि समय के बीतने के साथ-साथ खेती पर ही हमारे गुजर करने का अनुपात घटता जाये। लेकिन, हिन्दुस्तान में खेती ही आम पेशा है, इसलिये ऐसा होना अभी सम्भव नहीं जान पड़ता। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि अपनी खेती-बाड़ी में खादों द्वारा, पौदों के परस्पर सम्मिश्रण से उनकी नई नसलें तैयार करके तथा अच्छे और उत्तम बीज बोकर हम उन्नति करें। अमरीकन विचारक के० एल० मिचेल ने लिखा है—"यह मानने के काफी कारण हैं कि हिन्दुस्तान अपने उत्पादन साधनों का समुचित उपयोग करके, अब उसकी जितनी जन-संख्या है, उससे कहीं अधिक को आश्रय दे सकता है। भारत की दरिद्रता का कारण उसकी जन-संख्या के बढ़ने का अनुपात नहीं है, किन्तु यह कि उसका आर्थिक

विकास बिलकुल रुक गया है।"

कई दूसरे विचारकों का कहना है कि सारी समस्या बँटवारे की है। डा० पी० जे० टामस का विचार है कि जन-संख्या का प्रश्न बँटवारे की प्रथा की भारी असमानता और अन्याय का ही परिणाम है। प्रो० ब्रजनारायण लिखते हैं—"जन-संख्या जिस सिद्धान्त पर इस समय भारत में बढ़ रही है उसका अधिक सम्बन्ध धन के बँटवारे और हमारी आमदनी से है, न कि देश में उत्पन्न हुए अनाज की मात्रा से।" इस युक्ति से भी यही उचित जान पड़ेगा कि देश में उपज बढ़े और उसका अधिक न्यायोचित बँटवारा हो। अनुमान किया गया है कि लड़ाई के पहले भारत में समस्त-राष्ट्रीय धन का एक तिहाई भाग जनता के ५ फी सदी लोगों के हाथ में, एक तिहाई ३२ फी सदी लोगों के हाथ में और शेष एक तिहाई भाग ६३ फी सदी लोगों के हाथ में था। इस विषमता में एक समता आये, यही कल्याणकारी बात है।

इस बात का विरोध अर्थहीन होगा कि हमारे देश में राष्ट्रीय मूल के विभाजन में दूसरे देशों की तरह काफी विषमता है। फिर भी यह न मानना कि हमारी जन-संख्या का मुख्य कारण अनाज पैदावार की कमी है, ठीक नहीं जँचता। बँटवारे की समस्या बहुत ही उलझी हुई है। उसमें परिवर्तन का अर्थ आज के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे को बिलकुल ही बदल देना होगा।

नैशनल प्लैनिंग कमेटी की जन-संख्या सम्बन्धी उपसमिति ने इस समस्या का निदान करते हुए कहा है कि "किसी भी दिशा में सामूहिक तौर पर योजना के अनुसार आर्थिक विकास नहीं हो रहा है।" उस कमेटी ने राय दी है कि "आज जनसंख्या और उसके रहन-सहन के स्तर में जो विषमता पाई जाती है उसे दूर करने का मौलिक उपाय तो देश की निश्चित योजनानुसार सुविस्तृत आर्थिक उन्नति ही है।" इस योजना को सभी उचित मानते हैं, किन्तु इस प्रकार की कोई भी योजना शासन और जनता की मिली-जुली कोशिशों का ही

परिणाम हो सकती है। देश में इस बात की शक्तिशाली और वेगमयी प्रेरणा उत्पन्न हो जानी आवश्यक है, जिससे कि देश के सब शक्ति-स्रोतों का उचित रूप में उपयोग हो सके। परन्तु देश के पूरे तौर से आज़ाद होने तक यह कुछ भी नहीं हो सकता। इसके लिये एक केन्द्रीय नियन्त्रण की बड़ी जरूरत है। जब तक हम पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं हो जाते, सभी दृष्टियों से वाञ्छनीय केन्द्रीय योजना केवल एक स्वप्न के समान ही रहेगी।

जनसंख्या को कम करने के लिए कृषि से सम्बन्धित उद्योग धन्धों को विशेष प्रोत्साहन मिलना चाहिए। मिसाल के तौर पर दूध और दूध से निर्मित वस्तुओं का धन्धा, फलों की उत्पत्ति और फलों को डिब्बों में बन्द करना, रस आदि निकालना तथा इसके साथ-साथ ही मुर्गियों को पालना जिससे अण्डों की पैदावार बढ़े। यह सब कृषि सम्बन्धी उद्योग-धन्धे हैं। गाँवों में शहद की उत्पत्ति भी लाभप्रद हो सकती है। इस प्रकार के कितने ही धन्धे ग्रामीणों के लिए निकल सकते हैं, जिनसे राष्ट्रीय धन में वृद्धि होगी।

हमें अपने मौत के अनुपात को कम करने की भी लगातार कोशिश करनी चाहिए। विशेष रूप से प्रसवावस्था में प्रसूता और बच्चों का अवश्य ध्यान करना चाहिए। आम जनता में सफ़ाई, स्वच्छता के भाव भर देने से ही ऐसा हो सकता है। अज्ञान और अन्ध-विश्वास को दूर करने की कोशिशें होनी चाहिएँ। बीमारियों को समूल दूर करने का प्रयास किया जाना ज़रूरी है। मौत और जन्म-अनुपात सदा साथ-साथ ही चलते हैं। मौत के अनुपात को घटाने में जिस ज्ञान और स्वच्छता का प्रचार होगा और रहन-सहन का स्तर जितना ऊँचा होगा, जन्म अनुपात स्वयं ही उसी के मुताबिक कम हो जायगा। इस प्रकार बाकी ज़िन्दा रहने वालों की संख्या के अनुपात में कमी न होगी। दाइयों को उचित वैज्ञानिक शिक्षा दी जानी चाहिए। भारत में कन्याओं की ओर जिस लापरवाही का व्यवहार होता है उसे शिक्षा और प्रचार द्वारा हटा

देना चाहिए।

पैदाइश के समय प्रत्याशित आयु में वृद्धि और जनता की जीवनी-शक्ति में उन्नति होनी चाहिए। उसके लिए यह भी ज़रूरी है कि हमारे खुराक में शरीर को ताकत पहुँचाने वाली चीजें ठीक मिकदार में मौजूद हों। ऐसे सामाजिक नियम बन जाने चाहिएँ कि शरीर के पूरे तौर पर परिपक्व होने से पहले स्त्रियों को माँ न बनना पड़े और विवाह कम उम्र में न हों।

सरकार की ओर से छूतछात की बीमारियों की रोक-थाम के इन्तज़ाम होने चाहिएँ। ऐसे इन्तज़ाम सब गावों और नगरों में फैले हों तभी लाभ है। देश से मलेरिया के मर्ज को पच्छिमी देशों की तरह उखाड़ फेंकनें के उपाय करने चाहिए।

जनसंख्या में स्त्री-पुरुषों के अनुपात में विषमता के कुप्रभावों को दूर करने के लिए ज़रूरी है कि समाज विधवा विवाह की आज्ञा दे दे। पुराने रूढ़िवादी विचारों के दूर होने में ज़रूर ही समय लगेगा, लेकिन उन्हें दूर किये बिना हमारा निस्तार नहीं है। हमारे लिए अपनी हानिकारक पुरानी परम्पराओं का राष्ट्र की जरूरतों के सामने बलिदान करना बहुत ज़रूरी है।

प्रजनन-विज्ञान (यूजनिक्स) के अनुसार अन्तर्जातीय विवाहों की आज्ञा हो जानी चाहिए। जो लोग ऐसे रोगों के शिकार हों, जो सन्तान को लग सकते हैं, उन्हें सन्तान पैदा करने योग्य नहीं रहने देना चाहिए।

हमारी स्थायी उन्नति तो तभी हो सकेगी जब हम अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी इन क्षेत्रों के अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य और राष्ट्रीय बीमा आदि की योजनाओं में इतनी ही रुचि रक्खेंगे। इङ्गलैण्ड की मजदूर सरकार ने केवल इन्हीं विषयों में १ अरब ४० करोड़ रुपये के लगभग (१०६२ लाख पौण्ड) व्यय करने की योजना बनायी है। हमारे बजट में राष्ट्र की उन्नति करनेवाले इन महकमों के लिए बहुत कम खर्च मंजूर हुआ करता है। इस धीमी चाल से क्या कुछ हो सकने की

आशा की जा सकती है ? हम प्रायः सभी बातों में पिछड़े हुए हैं। रचनात्मक योजनाओं को काम में लाने के लिए अब हमें पूरे तौर से कोशिश करनी ही चाहिए, नहीं तो हम देशों की दौड़ में पीछे रह जाएंगे।

इस सवाल का हल तो तभी हो सकेगा, जब भारतीयों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा होगा। यह तब हो सकेगा जब हमारी उपज और हमारा विदेशों से लेन-देन बढ़े तथा राष्ट्रीय आय का समान रूप से बँटवारा हो। भारत की उपज हर आदमी के हिसाब से बिलकुल साधारण है और इसका मूल कारण हमारी खेती है। अनुमान लगाया गया है कि जमीन को क्षीणता से बचाने के लिए ठीक उपज को बारी-बारी पैदा करके हरी खाद पैदा करके, ज़मीन के टुकड़ों की चक-बन्दी करके बिना नई पूँजी लगाये ही हम अपनी उपज को २५ फीसदी बढ़ा सकेंगे। अच्छे बीजों को काम में ला करके ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर रकबा बढ़ा कर, चारों ओर बाड़े लगाकर इस उपज में २५ फी सदी वृद्धि और हो सकती है। सिर्फ ऐसा करके ही हमारे कृषकों के जीवन का स्तर कुछ ऊँचा हो सकेगा। इस समय कृषि की आय अत्यन्त कम होने से उद्योगधन्धों में लगे मज़दूरों के वेतन भी इतने ही कम हैं। एक मज़दूर मासिक इतनी तनख्वाह पाने की कैसे आशा कर सकता है जितनी कि एक किसान परिवार साल भर मेहनत करके प्राप्त करता है ? हमारा विदेशी लेन-देन भी हर इन्सान के हिसाब से अत्यन्त कम है; यह जापान से दसवाँ हिस्सा और ब्रिटिश मलाया का २० वाँ भाग है। राष्ट्रीय धन के उचित बँट-वारे की कोई योजना हमारे यहाँ है ही नहीं।

: ८ :

समस्या और उसका हल (ख)

इस समस्या का हल जो खुद इन्सान कर सकता है वह उसकी प्रजनन-शक्ति से सम्बन्ध रखता है। इन्सान को अपनी तादाद बढ़ाने की और धरती पर नई जिन्दगी ले आने की अनोखी और आसान शक्ति प्राप्त है।

जनसंख्या सम्बन्धी माल्थ्यूस द्वारा प्रस्तावित कानून में यदि मनुष्य अपनी इस शक्ति का प्रयोग बिना अपने आपको नियन्त्रण में रक्खे किए चलता है तो संख्या को, एक सीमा तक जिसका निश्चय अन्न की प्राप्य मात्रा द्वारा होता है, रोक रखने के लिए कुदरत अपने अमानवीय साधनों का इस्तेमाल करती है। इसलिए या तो हमें अपनी संख्या ही अनाज के अनुसार सीमित रखनी चाहिए या अनाज प्राप्ति की सीमा को विस्तृत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

हिन्दुस्तान में इन दोनों में से हम एक भी कोशिश नहीं कर रहे हैं। जनसंख्या की समस्या के हल के लिए यह जरूरी है कि हम अपनी सन्तान पैदा करने की शक्ति को खुद काबू में करें। "जब तक जन-संख्या को घटाने के लिए रुकावट नहीं होगी, बाकी सब कोशिशें क्षणिक और अस्थाई सिद्ध होंगी।" यदि भारत को खेती के विकास, अनाज की पैदावार की वृद्धि और अच्छी तरह उद्योगीकरण से कोई लाभ उठाना है तो हमें अपनी जनसंख्या में निश्चय ही कमी करनी पड़ेगी।

हिन्दुस्तान में परिवारों के विषय में किसी तरह की योजना नहीं बनाई जाती। विवाहावस्था में कितनी सन्तान उत्पन्न करनी उचित है, इसे कोई भी नहीं सोचता। परमात्मा की सुलभ देन की तरह, सन्तान

हमारे स्त्री-पुरुष सम्बन्ध से स्वयं ही उत्पन्न होती चली जाती है।

जनता के इसी अनियन्त्रित और घटना वश जन्म-अनुपात के कारण हमारी मृत्यु संख्या भी इतनी ज्यादा है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपनी प्रजनन शक्ति का अनुचित उपयोग न करें तथा इस सम्बन्ध में समझ-बूझ से काम लें।

अपनी शक्ति को रोकने के दो उपाय हैं—(१) संयम या ब्रह्मचर्य (२) गर्भ रोकने के लिये नई ईजाद की चीजों का इस्तेमाल। इनमें नैतिक दृष्टि से सयम् अधिक उचित है, पर इसमें हम किस सीमा तक सफल हो सकते हैं इसमें सन्देह है। आज का हमारा सारा सभ्य जीवन इतना दूषित हो गया है कि संयम की बात सोचना भी निराशा-जनक होगा। पर फिर भी यह जरूरी है कि संयम की शिक्षा दी ही जाय। साथ-साथ केवल आदर्शवाद की बातें न करके जमीन पर पाँव रक्खे रहना भी जरूरी है। जान पड़ता है कि गर्भ रोकने के उपाय कुछ हद तक हमारी समस्या के इस रूप का सामयिक हल हैं। जन-संख्या में जो निरन्तर वृद्धि हो रही है, वह हमारी कठिनताओं को बढ़ाये ही जायगी, इस के विपरीत जनसंख्या की कमी के साथ मृत्यु अनुपात में भी कमी हो जायगी तथा हमारे रहन-सहन का स्तर ऊँचा होगा। स्त्रियों का स्वास्थ्य भी सन्तान कम होवे से बेहतर रहेगा और वह थोड़ी सन्तान के लिए अधिक शक्ति व्यय कर सकेंगी। स्वयं गान्धीजी के विचारानुसार "गर्भ-निरोध पर बिलकुल ही मतभेद नहीं हो सकता।" परन्तु इस निरोध के लिए आधुनिक साधनों के प्रयोग की जगह वह संयम चाहते हैं।

वर्तमान मनोवैज्ञानिक दार्शनिकों का कहना है कि "पुरुष और स्त्री का परस्पर प्रेम-व्यवहार पशुओं के मैथुन जैसा नहीं रह गया है।" आज स्त्री-प्रसंग का सामाजिक रूप हो गया है और उसके सामाजिक परिणाम भी हो गये हैं। परम्परागत स्त्री सहवास का उदात्तीकरण हो गया है। "यदि इस रूप को वैयक्तिक रूप में सफलता से पलटना है तो आव-

श्यक है कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के भौतिक परिणामों से बचा जाय ।"[1]

उस सन्तान पर जो बिना चाही हुई और घटनावश होती है, मनोवैज्ञानिक संस्कार और प्रभाव बहुत ही बुरे होते हैं। यह निश्चय है कि अक्सर सन्तानें ऐसी ही मनोवृत्ति की हालत में पैदा होती हैं। इससे सन्तान के मन में भय की भावना उत्पन्न हो जाती है। सन्तान तो "अपने जाने-बूझे प्रयत्नों का फल, प्रेम से उत्पन्न और उत्तरदायित्व के साथ पालित-पोषित होना चाहिए।"

गर्भ रोकने के उपायों को यौन सम्बन्ध का प्रतीक नहीं समझना चाहिए। इसको बहुत ही जरूरी समझ कर इसके लिए युक्ति प्रस्तुत की गई है। पच्छिम में नगर निवासियों की बढ़ती हुई संख्या से, शहरी जिन्दगी की भिन्नताओं से, केवल परिवार में ही आकर्षण और रुचि की कमी व अभाव से और देशों के आर्थिक जीवन में स्त्रियों के सहयोग से जन्म अनुपात में पर्याप्त कमी हो गई है। हिन्दुस्तान में ऐसे प्रभावों का बिलकुल अभाव है।

सवाल यह है कि क्या गर्भ रोकने के साधनों को हम भारत में लोकप्रिय कर सकते हैं? राष्ट्रीय रुचि के प्रश्न को छोड़कर देश की लम्बाई-चौड़ाई और इसका ग्रामीण निर्धन जीवन एक बहुत बड़ी अड़चन के समान है।

फिर भी चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार और सफाई के प्रचार के साथ-साथ देश में गर्भनिरोधक शिक्षा का प्रचार भी किया जा सकता है।

गर्भ निरोध स्वयं ही उद्देश्य नहीं है। यह तो एक उद्देश्य पूर्ति के लिए रास्ता है। जनसंख्या की समस्या को हल करने में मनुष्य कुछ से ही पहल कर सकता है। इस समस्या की जटिलता इसके सर्व-व्यापी गतों के कारण सुलझनी बहुत जरूरी है।

---

१ डा० बेराबनोल्क

उत्तरार्द्ध

खुराक

: १ :

उष्णता

विज्ञान ने अनाज से प्राप्त होनेवाली ताकत की एक मिकदार नियत कर दी है, जिसे अंग्रेजी में कैलरी कहते है। हम इसे उष्णता कहेंगे। हम जो कुछ खाते अथवा पीते हैं, उससे शरीर को कुछ पोषण मिलता है। उष्णता उस पोषण का माप दण्ड है। उष्णता की इकाई उष्णता की उस मात्रा को कहते हैं जो लगभग एक सेर पानी का तापमान १ डिग्री सेण्टीग्रेड बढ़ा सके। खुराक की किसी एक मिकदार को एक खास यंत्र कैलोरी—मीटर में जलाकर उसकी उष्णता का पता लगाया जाता है। सब प्रकार की खुराकों या पीने की चीजों से इन्सान को कितनी उष्णता मिलनी चाहिए, इसकी भी खोज कर ली गई है। बच्चों के लिए, स्त्रियों के लिए, गर्भावस्था, प्रसूतिकाल अथवा दूध पिलाने के अन्तर में माताओं के लिए, कड़ी मेहनत करनेवाले मजदूरों के लिए अथवा साधारण बुद्धि—जीवियों के लिए उष्णता अलग-अलग मिकदारों में जरूरी होती है। लीग आफ् नेशन्स की आहार समिति ने इस विषय में उष्णता का आदर्श-परिमाण कायम कर दिया है। अलग-अलग देशों ने अपने जलवायु का ध्यान रखते हुए उष्णता की अपनी-अपनी जरूरतें कायम कर ली हैं और अपनी जनता को उस मात्रा में उष्णता दिलाने की कोशिशें वहाँ की जाती हैं। हिन्दुस्तान में आहार-विज्ञान के इस पहलू से हम बिलकुल अनजान हैं। हमारे भोजन में धर्म, मर्यादा, परम्परा और जाति-वर्ण आदि के भेद का हस्तक्षेप तो है, किन्तु वैज्ञानिक आवश्यकता इसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकती। यह दुर्भाग्य की बात है। परन्तु आशा है जैसे-जैसे अज्ञान से हम अपना पीछा छुड़ाते जायँगे, जरूरी परिवर्तन होते जायँगे।

: २ :

आहार-तत्व

जिन्दगी कायम रखने के लिए हम जो कुछ खाते-पीते हैं उसका मतलब सिर्फ भूख मिटाना या पेट भरना ही नहीं है। आज खाद्य के वैज्ञानिक विश्लेषण से और खाद्य में विद्यमान जुदा-जुदा तत्वों के हमारे शरीर पर जो प्रभाव होते हैं, उनसे हम सुपरिचित हो गये हैं। अपनी भूख मिटाने के लिए हम कौन सी खुराक लें, यह जान लेना आसान हो गया है। शरीर के लिए जरूरी अनाज के अलग अलग तत्व हमें किस मात्रा में प्राप्त होने चाहिएँ, यह जान लेने से हम अपने भोजन से उचित आहार-मूल्य ग्रहण कर सकेंगे। भूख को शान्त करने योग्य अन्न खाकर भी हम निर्बल रह सकते हैं, क्योंकि हो सकता है, और जैसा कि हमारे देश में प्रायः होता भी है, कि हमारे भोजन में आवश्यक रक्षक-तत्व न हों।

आहार-विज्ञान ने सब अनाजों और पेय पदार्थों की खोज की है और यह पाया है कि इनमें प्रोटीन, चिकनाहट, खनिज तत्व, कार्बोज, कैलशियम या चूना, फासफोरस, लोहा और जुदा-जुदा विटामिन के कुछ अंश और कुछ मात्रा रहती हैं। इन तत्वों का हमारे भोजन में होना जरूरी है। इस तरह खुराक का विश्लेषण करके सब तरह के खाद्य को तीन भागों में बाँट दिया गया है—(१) अधिक रक्षक-तत्व-पूर्ण खाद्य (२) कम रक्षक-तत्व-पूर्ण खाद्य (३) रक्षक-तत्व-हीन खाद्य। हमें अगले अध्यायों से विदित होगा कि हिन्दुस्तानियों को जो कुछ थोड़ा-बहुत अनाज मिलता है उसका अधिकांश रक्षक-तत्व-हीन खाद्य का ही बना होता है। उसमें जरूरी रक्षक तत्वों का नितान्त अभाव होता है। इन तत्वों के न रहने से शरीर में रोग-

विरोधी शक्ति नहीं बनी रह सकती । नतीजा यह होता है कि सब तरह के रोग-कीटाणु मनुष्य को आक्रान्त कर सकते हैं, जिसका समुचित उदाहरण भारत में प्राप्य है ।

आहार में पाये जाने वाले अलग-अलग तत्त्व शरीर को किस रूप में लाभदायक और किस अनुपात से जरूरी हैं और वह किस-किस अन्न में पाये जाते हैं यहां इसका खुलासा दिया जायगा ।

(१) प्रोटीन—यह वह तत्त्व है जिससे हमारे शरीर के मांस-मज्जा का निर्माण होता है । शरीर के प्रायः सभी मांसल हिस्सों की रचना के लिए प्रोटीन जरूरी है । बचपन में तो आहार तत्त्व में प्रोटीन का होना बहुत जरूरी है । केवल जीवित रहने की क्रिया से ही हमारे शरीर के कुछ न-कुछ भाग का क्षय अवश्य होता रहता है, उसकी मरम्मत करते रहना प्रोटीन का काम है । मकान बनाते समय राज-मजदूर जिस प्रकार ईंट-पर-ईंट रखकर दीवार चुनता है उसी प्रकार प्रोटीन तत्त्व हमारी शरीर की रचना में ईंट के समान कार्य देता है । इसकी कमी से एडीमा (हाथ, पाँव, आँखों का सूजना), आँव दस्त का आना आदि रोग हो जाते हैं

प्रोटीन का कार्य इस स्थूल रचना में ही नहीं है, इससे शक्ति भी प्राप्त होती है । प्रोटीन के द्वारा, कार्बोज तत्त्व की तरह, लेकिन अनुपात में उससे कम, पर काफी मिकदार में, उष्णता भी प्राप्त होती है ।

प्रोटीन सबसे अधिक मात्रा में मांसज खाद्यों से प्राप्त होती है । दूध, पनीर, अण्डे, मछली और मांस में प्रोटीन अधिकता से पाया जाता है । प्रायः सभी अन्नों में प्रोटीन की थोड़ी—बहुत मात्रा रहती है । यह गेहूँ में बहुत अधिक और चावल में बहुत कम होता है । चने, दालों, मटर और फलियों में भी प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में रहता है तथा सब्जियों (आलू आदि) और फलों में अपेक्षाकृत बहुत ही कम । फिर भी केवल प्रोटीन का मौजूद रहना ही लाभदायक नहीं है । यह प्रोटीन भी अधिक जीवन तत्त्व (बायलोजिकल—मूल्य) का होना चाहिए ।

जुदा-जुदा अनाजो में प्राप्त प्रोटीन तत्त्वों के अन्दर उनकी एमिनो-एसिड रचना अलग--अलग होती है। जिस प्रोटीन की रचना की हमारे शरीर के मांस--मज्जा की रचना से तुलना हो सके वही अधिक लाभ--दायक और मूल्यवान होता है। यह ध्यान में रखना भी आवश्यक है कि भोजन का प्रोटीन--तत्त्व जल्दी से पचने वाला है या देर से। साधारणतया अन्न शाकादि से प्राप्य प्रोटीन-तत्त्व उतना लाभ प्रद नहीं होता जितना कि मांसज--खाद्यों से प्राप्त होने वाला प्रोटीन (जैसे दूध, पनीर, मांस आदि से)। मांसज प्रोटीन की एमिनो-एसिड रचना की हमारे शरीरस्थ मांस-मज्जा से बहुत भिन्नता नहीं रहती। इस प्रकार हमारी शारीरिक उन्नति में वह अधिक सहायक सिद्ध होता है। बचपन, गर्भावस्था तथा जब बच्चे को माता स्वयं दूध पिलाती हो, अधिक मात्रा में प्रोटीन का सेवन बहुत जरूरी है। बच्चो को तो विशेषकर दूध की पर्याप्त मात्रा से ही प्रोटीन प्राप्त करना चाहिए। दही, लस्सी से भी सगुण प्रोटीन मिल जाता है। दूध से मलाई निकाल या उतार लेने पर उसके प्रोटीन तत्त्व को कोई क्षति नहीं पहुँचती।

(२) चिकनाहट—सभी आहारो में चिकनाहट का होना भी आवश्यक समझा गया है। इस चिकनाहट से, जो मक्खन, घी, वानस्पतिक तैल, वनस्पति घी, सोया फली, गिरी, बादाम आदि मेवों में मिलती है, हमें पर्याप्त मात्रा में उष्णता और विटामिन 'ए' और 'डी' प्राप्य हो सकते हैं। शक्ति प्राप्ति के लिए चिकनाहट और कार्बोज दोनों से काम लिया जा सकता है। चिकनाहट शक्ति का सबसे अधिक केन्द्रित स्रोत है। इसके अभाव से शरीर में एक 'अप्रत्यक्ष' भूख अनुभव होने लगती है। वनस्पति से निर्मित घी और तेल में यह विटामिन विद्यमान नहीं रहते, इसलिए इनका प्रयोग उतना लाभदायक नहीं है, जितना कि मांसज चिकनाहट का। मांसज--चिकनाहट में भी दूध से बने घी और मक्खन सर्वश्रेष्ठ है। पश्चिमी अफ्रीका, मलाया और बर्मा में पाये जाने वाले एक विशेष प्रकार के ताड़ वृक्ष (रेड पाम ट्री)

के फल से निकाले गए तेल में विटामिन 'ए' पाया जाता है। चिकनाहट से उष्णता की पर्याप्त मात्रा मिलती है।

आहार-विज्ञान अभी यह निश्चय नही कर पाया कि हमें शरीर के लिए चिकनाहट की कितनी मात्रा आवश्यक है, फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ अनुमान और निश्चय कर लिये गये है।

(३) कार्बोज—प्रायः सब प्राप्त अनाजों का अधिकांश कार्बोज (कार्बोहाइड्रेट) का बना हुआ होता है। शरीर को अधिक मात्रा मे उष्णता अथवा शक्ति इसी से मिलती है। हमारी खूराक में भी अधिक कार्बोज ही खाये जाते हैं। मनुष्य जितना निर्धन होगा वह उतना ही अधिक कार्बोज-मय भोजन करेगा क्योंकि यही सबसे सस्ता भोजन है। अधिक कार्बोज तत्त्व से युक्त भोजनो की गणना रक्षक-तत्त्व-विहीन खाद्यों में की जाती है। सबसे अधिक कार्बोज खाण्ड, शहद और निशास्तों मे मिलती है गेहूँ, चावल, मकई आदि अनाजों में और जड की सब्जियों में जैसे चुकन्दर, शकरकन्द, आलू और जिमीकन्द में कार्बोज अधिक मात्रा में पाया जाता है। कार्बोज शरीर में ईंधन का काम देते हैं, परन्तु जिस खुराक में सिर्फ कार्बोज ही हों, प्रोटीन, चिकनाहट, विटामिन अथवा खनिज क्षारादि न हो, उसे पूरा आहार नहीं कहा जा सकता। वास्तव में आहार का निश्चय करते समय कार्बोजों का ध्यान सबसे पीछे किया जाना चाहिए। दुर्भाग्य से हिन्दुस्तानियों की ज्यादा तादाद सिर्फ कार्बोजों पर निर्भर है जिसके फलस्वरूप हमें बहुत असन्तुलित खुराक मिलती है।

(४) खनिज-क्षार—यह भी प्रोटीन की तरह ही शरीर-रचना के लिए आवश्यक हैं। खुराक में यह बहुत थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं, लेकिन उस थोड़ी मात्रा में होते हुए भी इनका प्रभाव शरीर पर बहुत अधिक होता है। खनिज तत्त्वों में हमें कैलशियम या चूना फासफोरस, लोहा और आयोडीन की कुछ-न-कुछ मात्रा प्राप्त होनी ही चाहिए। हमारी हड्डियां कैलशियम से ही बनती हैं। जिस व्यक्ति के

आहार में कैलशियम का अभाव होगा उसकी हड्डियां, दाँत निर्बल और सरोग हो जायंगे। शरीर में कैलशियम की कमी से और कितने ही रोग उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार खून बहना आरम्भ होने पर उसमे जम जाने की शक्ति नहीं रह जाती, हृदय की गति अनियमित रहने लगती है। कैलशियम दूध पनीर, मट्ठा और हरे पत्तों वाली सब्जियों में उचित परिमाण में पाया जाता है। चावल में कैल-शियम की मात्रा बहुत कम होती है, इसलिए सिर्फ चावल पर ही निर्भर रहने वाले कैलशियम की कमी से उत्पन्न होने वाले रोगों के शिकार हुआ करते हैं।

शैशवावस्था, गर्भकाल और दूध पिलाती हुई माताओं को अधिक मात्रा में कैलशियम तत्त्व-पूर्ण आहार लेना चाहिए। इस समय बच्चे की हड्डियाँ बन रही होती हैं इसलिए कैलशियम का व्यवहार इन हड्डियों के निर्माण और बलिष्ठ होने में सहायक होता है। इन अवस्थाओं में दूध से प्राप्य कैलशियम बहुत लाभदायक होता है।

फासफोरस कच्चे अनाजों में मिलता है, परन्तु इन अन्नों को धोने और आग पर पकाने से यह तत्त्व काफी नष्ट हो जाता है। लोहा हमारे रक्त के लाल अंश, जिसका लोहे से निर्माण होता है, 'हेमोग्लोबिन' में पाया जाता है। इसकी लाली को उचित मात्रा में बनाये रखने के लिए आहार में लोहे का होना आवश्यक है। इस रक्त के कुछ भाग का शरीर के अलग-अलग हिस्सों में रोजाना नाश होता रहता है। मलेरिया और पेट में कृमि होने से (यह दोनों रोग हिन्दुस्तान में आम तौर पर पाये जाते हैं) हमारे खून में कमी हो जाती है और उसकी लाली घट जाती है। इसे ठीक करने के लिए लोहा आवश्यक है। गर्भावस्था में पोषण पाते हुए बच्चे को लोहे की अधिक जरूरत होने से स्त्रियाँ आम तौर पर रक्त की न्यूनता से पीड़ित हो जाती हैं और इनके लिए कैलशियम और प्रोटीन की तरह लोहे की अपेक्षा कृत

दार सब्जियों से लोहा उचित मात्रा में मिल जाता है। माँस, अण्डे, मछली और मेवों में भी लोहा रहता है। सब्जियों में प्राप्य लोहा उतना शीघ्र नहीं पचता जितना अन्न, दालों और मांस में पाये जाने वाला पच जाता है।

इन तत्त्वों के अतिरिक्त शरीर को आयोडीन, ताँबा और जिस्त भी (बहुत थोड़ी मात्रा में) चाहिएं जिन खाद्यों में लोहा कैलशियम आदि होते हैं उनमें इनका होना भी सहज सम्भव है।

(५) विटामिन—शरीर के लिए आवश्यक उन्हीं तत्त्वों को रक्षक-तत्त्व कहा जाता है जिनमें विटामिन अधिक मात्रा में पाये जाय। विटामिन शरीर के अंगों की नियमित और उचित रूप में रक्षा और उनके परिचालन के लिए आवश्यक होते हैं। जुदा-जुदा विटामिन शरीर के बहुत से रोगों को दूर रखते हैं और इनकी कमी उन रोगों के बढ़ जाने का कारण हो जाता है।

हमारे अध्ययन के लिए विटामिन 'ए' और कैरोटीन (प्रोविटामिन 'ए'), विटामिन 'बी १' और 'बी २', विटामिन 'सी' और 'डी' काफी हैं। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही विटामिन हैं।

विटामिन 'ए' आँखों के और चर्म के रोगों को दूर रखने के लिए आवश्यक है। खुराक में इसकी कमी से बचपन में अन्धा हो जाने का डर होता है। इसकी कमी से रात का अन्धापन हो जाता है, जब कि थोड़े से भी अँधेरे में कुछ नहीं दीखता। शरीर की चमड़ी कोमल न रहकर खुरखुरी और जहाँ-तहाँ मोटी हो जाती है। विटामिन 'ए' शरीर को स्वस्थ रखने और इसकी ठीक रूप में उन्नति में सहायक होता है।

बहुत-सी वनस्पतियों में विटामिन 'ए' नहीं होता, किंतु प्रायः वैसे ही गुण-स्वभाव वाला प्रो-विटामिन 'ए' जिसे आमतौर पर कैरोटीन कहा जाता है, पाया जाता है। विटामिन 'ए' माँसज पदार्थों में यथा दूध, दही, मक्खन, शुद्ध घी, अण्डे की जर्दी और मछली में अधिकता

से पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा स्रोत तो कॉड, शार्क मछली और हैलीबट मछली का तेल होता है। गाजर, पालक, सलाद, अजवायन के पत्ते, बन्दगोभी, चौलाई का साग, धनिया, पके हुए आम, पपीता, टमाटर और सन्तरों आदि में कैरोटीन की काफी मात्रा रहती है। अधिकतर पीली सब्जियों मे यह पाया जाता है। वनस्पति से बने तेल या घी में यह नहीं होता। जो गौएँ खुले चरागाहों में विचरण कर हरी घास चरती है उनके दूध मे विटामिन 'ए' बहुत पाया जाता है। सब्जियाँ जितनी ताजी और जितनी हरी होंगी उनमें कैरोटीन की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

आहार मे पाये जाने वाले विटामिन 'ए' और कैरोटीन तत्व का अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयों में परिमाण निश्चित किया गया है। खुले बर्तन मे घी को बहुत गर्म करने से विटामिन 'ए' के नष्ट हो जाने का भय रहता है। आमतौर पर पकाये जाने से सब्जियों का कैरोटीन नष्ट नहीं होता।

विटामिन 'बी' वास्तव में एक विटामिन समूह का नाम है। विटामिन 'बी१' जिसे 'थायमिन' भी कहते हैं, पाचन-शक्ति और भूख को ठीक रखने के लिए तथा बेरी-बेरी रोग को रोकने के लिए बहुत जरूरी होता है। इसमें मनुष्य की टाँगें कमजोर हो जाती हैं और ठीक तरह से चला-फिरा नहीं जा सकता। शरीर में कार्बोजों के उचित उपयोग को यह सहायता देता है। हमारे सांस लेने के अभ्यास और अवयवों को भी यह स्वस्थ रखता है। विटामिन 'बी१' बिना कुटे अनाज दालों, फलों, पत्तेदार सब्जियों और अण्डों में पाया जाता है। अनकुटे चावलों में या घर में ही पिसे-कुटे हुए चावल में, जिससे कि चावलों के ऊपर का लाल-सा भाग (धान की पतली त्वचा), न उतारा गया हो, विटामिन 'बी१' बहुतायत से मिलता है। सुखाये हुए खमीर और अधपके चावलों में भी इसकी काफी मिकदार रहती है। दूध में विटामिन 'बी१' उचित मात्रा में नहीं पाया जाता।

विटामिन 'बी२' में बहुत से विटामिन सम्मिलित हैं। यह भी एक आवश्यक आहार तत्त्व है। गेहूँ, मकई आदि अनाजों में, विशेष रूप से चावलों में, इसका अभाव है। दालों, चनों, हरी पत्ती वाली और जड़ की सब्जियों में यह पाया जाता है। साधारण तौर पर फलों में यह नहीं मिलता। इसका आवश्यक स्रोत खमीर, दूध, पनीर, दही कलेजा (यकृत) और अण्डे हैं। विटामिन 'बी२' के अभाव से मुख, जिह्वा और ओष्ठों के किनारों का फट जाना, पक जाना, दुखना तथा सूजना आदि रोग हो जाते हैं। इसकी कमी से पेलाग्रा (त्वचा का फटना) रोग भी हो जाता है।

विटामिन 'सी' (एस्कार्बिक एसिड) मुख्यतया ताजे फल और सब्जियों में ही पाया जाता है। सब्जियों या फलों के सूख जाने या बासी हो जाने पर उनमें से इस तत्त्व का लोप हो जाता है। इसलिए विटामिन 'सी' को प्राप्त करने के लिए फलों और सब्जियों को ताजा ही खाना चाहिए। सब्जियों में भी हरे पत्तों वाली में ही विटामिन 'सी' रहता है। दालों में और बाकी अनाजों में इसका अभाव होता है, किन्तु यदि उनको गीला करके अंकुरित होने के लिए छोड़ दिया जाय, तो उनमें अंकुर फूट जाने के बाद विटामिन 'सी' पैदा हो जाता है। अंकुर निकलने के बाद उनको कच्चा ही अथवा १० मिनट के लगभग पकाकर खाने से विटामिन 'सी' प्राप्त हो सकता है। अधिक देर खुले बर्तन में सब्जी आदि को पकाने से विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है। किन्तु साधारण आँच से वह बना रहता है। विटामिन 'सी' सबसे अधिक आमले में पाया जाता है। आमलों को बिना अधिक उबाले या पकाये ही खाना चाहिए। जितना विटामिन 'सी' दो सन्तरों में होता है उतना केवल एक आमले में ही रहता है।

आहार में विटामिन 'सी' के अभाव से 'स्कर्वी' नाम का रोग हो जाता है, जिसमें दाँत और मसूड़े खराब हो जाते हैं तथा शरीर के जोड़ों में—विशेषरूप से गिट्टों में दर्द और सूजन होने लगता है।

जिन बच्चों को डिब्बे का दूध या बहुत कढ़ा हुआ दूध दिया जाता है उन्हें विटामिन 'सी' उचित मात्रा में देने के लिए ताजे फलों का रस प्रतिदिन अवश्य देना चाहिए। विटामिन 'सी' को टिकियों के रूप में बाजार से भी खरीदा जा सकता है। अब तो प्रायः सभी विटामिन इस प्रकार मिल सकते हैं।

विटामिन 'डी' के अभाव से 'रिकेट्स' (बच्चों की टांगों की हड्डियों का टेढ़ा हो जाना) और 'आस्टियो मैलेशिया' (जो प्रायः स्त्रियों में होता है, जिसमें हड्डियों का कोमल हो जाना तथा उनमें टेढ़ापन आ जाने की प्रवृत्ति आदि हो जाती है और यह अधिकतर प्रसव के अनन्तर ही होता है) हो जाते हैं। विटामिन 'डी' और कैलशियम का विशेष सम्बन्ध है। जिस आहार में इस विटामिन और इस सार दोनों की ही कमी हो, वहां उपर्युक्त रोगों की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए इन दोनों तत्त्वों को भोजन में सम्मिलित कर लेना लाभकारी है। इस विटामिन से कैलशियम और फासफोरस के शरीर में जज्ब होने में सहायता मिलती है।

विटामिन 'डी' दूध, घी (उन गौओं या भैंसों का जो हरी घास खाती हों और हर रोज धूप में विचरती हों), अण्डे की जर्दी, यकृत अथवा मछली के तेलों में प्राप्य है। शरीर को धूप में नगा करने से सूर्य की किरणों द्वारा यह त्वचा में भी बन सकता है। इसलिए प्रतिदिन थोड़ी धूप अवश्य लेनी चाहिए। विटामिन 'डी' के उचित मात्रा में आहार में होने से दांत दृढ़ और अच्छे रहते हैं। भविष्य में सन्तान के स्वस्थ रहने के लिए माता को गर्भावस्था में इस विटामिन का अधिक प्रयोग करना चाहिए। पर्दे में रहने से स्त्रियों को प्राकृतिक धूप से जो विटामिन 'डी' मिल सकता है वह नहीं मिलता। सूर्य का प्रकाश इसके लिए बहुत जरूरी साधन है। साथ में उन खाद्यों और पेयों को भी लेना चाहिए जिनमें यह तत्त्व मौजूद हों।

आंच देने अथवा पकाने से विटामिन 'सी' के अलावा शेष आहार

तत्त्वों (प्रोटीन, चिकनाहट, कार्बोज आदि) को खास नुकसान नहीं पहुँचता। आहार के साथ कुछ फल ले लेने चाहिए जिस से विटामिन 'सी' मिल जाय। शेष अन्न और सब्जियों को भी बहुत देर तक आग पर नहीं पकाना चाहिए। खाना पकाते समय जब सब्जियों को उबाला जाय तब कुछ प्रोटीन अवश्य नष्ट हो जाते हैं। खासकर यदि उबालते समय नमक डाल दिया जाय तो। अन्नो को बहुत धोने और पकाने से अनेक खनिज तत्त्व और विटामिन 'बी' समूह के तत्त्वों का भी नाश हो जाता है। विशेषरूप में चावल को धोने और पकाने से उसमें फासफोरस तत्त्व बाकी नहीं रहता। धोने से कितने ही खनिज-तत्त्व बह जाते हैं। घी में तरह-तरह की चीजें तलने से घी में प्राप्य विटामिन 'ए' नष्ट हो जाता है। घी को साधारण तौर से पकाने में यह तत्त्व स्थिर रहता है। अन्नों को शीघ्र तैयार करने के लिए सोडे के व्यवहार से विटामिनों का नाश सहज ही हो जाता है, इसलिए सब्जी और दालों में सोडा नहीं डालना चाहिए। इसके विपरीत पकती सब्जी अथवा दाल बनाते समय उबलते पानी में इमली या इसी प्रकार की कोई खट्टी चीज डाल दी जाय तो वह विटामिनों की रक्षा में सहायक होती है।

: ३ :

खाद्य-पेय

आहार की कौन-कौन-सी वस्तुएँ किस-किस परिमाण में हमें खानी चाहिएँ, यह जानने से पूर्व आवश्यक है कि उनमें खाद्य-तत्त्व किस किस मात्रा में विद्यमान हैं, यह समझ लिया जाय। इसके बाद ही हम आदर्श भोजन के विचार तक पहुँच सकते हैं।

संसार-भर का मुख्य भोजन अनाजों, गेहूं, चावल, मकई, बाजरा राई, ज्वार, रगी (ओकड़ा) अथवा जौ से बनता है। पूर्वीय देशों में चावल का प्रयोग ज्यादा होता है। अमरीका, आयर्लैंड में गेहूं के साथ साथ मकई से निर्मित वस्तुएँ खूब खाई जाती हैं। बहुत से यूरोपियन देशों में राई से बनी चीजों की माँग अधिकता से रहती है। हिन्दुस्तान जैसे निर्धन देशों में ओकड़ा, बाजरा जैसे अनाजों का गेहूं और चावल के साथ-साथ प्रयोग होता है।

इन अनाजों की बनावट का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि इनमें १० से १२ फीसदी तक नमी, ७ से १३ फीसदी तक प्रोटीन ६५ से ७५ फीसदी तक कार्बोज, ½ से ८ फीसदी तक चिकनाहट और २ फीसदी के लगभग खनिज क्षार होते हैं। जैसा कि स्पष्ट है, इनका अधिकांश कार्बोज तत्त्वों का ही है। केवल कार्बोज तत्त्व के होने से भोजन को उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। इसलिए यह आवश्यक है कि इन अनाजों के व्यवहार के साथ दूसरे रक्षक-तत्त्व-पूर्ण खाद्य भी लिये जायँ।

अनाज के दानों के तीन भाग हुआ करते हैं:—(१) बीज—इसमें अस्फुटित अंकुर की गणना होती है। अनाज के इस भाग में प्रोटीन और चिकनाहट अच्छी मात्रा में रहती है। (२) स्थूल भाग—इसमें

निशास्ता, जिससे अधिक मात्रा में कार्बोज ही प्राप्त होता है, और कुछ प्रोटीन भी मिलती है। (२) धान्य-त्वचा—अन्न को कूट-पीसकर मशीनरी से इसमें सफेदी लाकर हम उसकी धान्य-त्वचा को अलग कर देने के अभ्यस्त हो गए हैं। अन्न के इसी भाग में विटामिन रहते हैं। अधिक रक्षक-तत्त्व अनाज के चोकर और मटियाले रंग की त्वचा में ही होते हैं।

चावल में, जो कि संसार के ७० करोड़ व्यक्तियों की प्रधान खुराक है, प्रोटीन की मात्रा बहुत कम होती है। ७ से ८ फीसदी तक उसके छड़े और अनछड़े तथा उबाले जाने की स्थिति में यह मात्रा घट-बढ़ जाती है। परन्तु चावल में प्रोटीन की मात्रा गेहूं से कम परिमाण में होने पर भी उसकी जीवनीय-शक्ति (बायलोजिकल मूल्य) गेहूं की प्रोटीन से अधिक होती है (चावल ८० : गेहूं ६७)। इस प्रकार प्रोटीन की यह कमी पूरी हो जाती है। परन्तु चावल में खनिज-क्षार और विटामिन उचित मात्रा में नहीं होते। जो खनिज-तत्त्व और विटामिन चावल में होते भी हैं, उनका भी हम मशीन द्वारा पिसाई व कुटाई करके और उन पर सफेदी लाकर तथा धोकर या बहुत उबाल व पानी निचोड़कर नाश कर देते हैं।

चावल के आहार-मूल्य को स्थिर रखने के लिए उसको कच्ची अवस्था में छिलके सहित ही भाप या पानी में आधे घंटे के लिए उबाला जाता है। उसके बाद कूटा या मशीन में पीसा जाता है। इस चावल को पारबोयल्ड चावल कहते हैं। इस प्रकार चावल की धान्य-त्वचा और छिलके के रक्षक-तत्त्व चावल के दानों के अन्दर चले जाते हैं, फिर उनके मशीनरी में छड़े जाने से भी नुकसान नहीं पहुँचता। चावल को कुदरती रूप में इस्तेमाल करने से इसे अच्छा समझा गया है। चावल में कैलशियम की मात्रा बहुत कम होती है। चावल गेहूँ में खनिज तत्त्वों की और विटामिनों की से अधिक मात्रा होती है। परन्तु गेहूँ को जितना बारीक पीसा जाता है उसके रक्षक-तत्त्व उसी अनुपात में

कम होते जाते हैं। मैदे में इन तत्त्वों का प्रायः अभाव रहता है। केवल बहुत सफेद चावल और बहुत बारीक पिसा हुआ आटा खाने वाले मनुष्य 'बेरीबेरी' रोग के शिकार हुआ करते हैं।

मकई का भी गेहूं की तरह आहार-मूल्य अधिक है। इसमें ६ फीसदी प्रोटीन रहती है और ५ फीसदी चिकनाहट। परन्तु इसमें खनिज तत्त्व बहुत कम होते हैं। केवल मकई पर निर्भर रहने वाले 'पेलाग्रा' रोग से पीड़ित हो जाते हैं। भारत में मकई का इस्तेमाल ज्यादा नहीं होता, इसलिए हम अब तक इस रोग से अपरिचित हैं। गेहूं की तरह रगी, ज्वार और बाजरा भी अपेक्षा कृत अच्छे आहार-तत्त्वों के अनाज हैं। इन्हें छिलका उतारे बिना खाया जाता है इसलिए इनके क्षार और विटामिन नष्ट नहीं होते। इस प्रकार के अन्नों में आहार की दृष्टि से सबसे अधिक मूल्यवान जई है, जिसमें चिकनाहट लगभग ६ फीसदी होती है। किन्तु यह गठिया के रोगी के लिए उचित खाद्य नहीं है, इसमें यूरिक-एसिड के तत्त्व रहते हैं, जिससे इस रोग के बढ़ने की आशङ्का रहती है।

ऊपर बताये गए अनाजों के अलावा दालों, फलियों, आदि का इस्तेमाल भी बहुत व्यापक है। इनमें चने, मूँग, उर्द, मसूर, अरहर की दालें, लोबिया, मटर आदि शामिल हैं। इन खाद्यों में शरीर-रचना के लिए आवश्यक वानस्पतिक प्रोटीन गेहूं, चावल आदि से अधिक अनुपात में पाये जाते हैं। इनमें विटामिन 'बी' भी पाया जाता है। वैसे अन्नों और दालों से उष्णता की अधिक मात्रा प्राप्त होती है और अन्य रक्षक-तत्त्व बहुत कम होते हैं। इन दालों का इस्तेमाल अंकुर उगाकर और विटामिन 'सी' पैदा करके करना अच्छा है।

दालों के अतिरिक्त भोजन में सब्जियां भी काम में लाई जानी चाहिएँ। इससे प्राप्त होने वाली उष्णता की मात्रा कम होती है, परन्तु इनमें रक्षक-तत्त्व, खनिज-क्षार और विटामिन अधिकता से प्राप्त

होते हैं। सब्जियों में भी हरी और ताजे पत्तों वाली सब्जियां, जैसे बन्द गोभी, चौलाई, बथुआ, सरसों का साग, मेथी, धनियां, सलाद, पालक आदि अधिक लाभ-प्रद हैं। इनमें विटामिन 'ए' और कैलशियम की मात्रा अधिक होती है। सब्जियों को ताज़ा और कच्चा खाने का अभ्यास भी डालना चाहिए। जड़ की सब्जियों में कार्बोज की मात्रा अधिक और कुछ विटामिन भी होते हैं। हमारे भोजनों में सब प्रकार की सब्जियों का सेवन बढ़ना चाहिए, क्योंकि रक्षक-तत्त्वों की मात्रा इनमें अपेक्षा-कृत अधिक होती है।

फल सब्जियों से भी अधिक लाभदायक हैं। इनमें प्रोटीन, खनिज-क्षार और कितने ही विटामिन पाये जाते हैं। नियम से इनका सेवन करने वालों को कब्जी की शिकायत नहीं रहती। आमला और टिमाटर में विटामिन और पोषक-तत्त्व अधिक मात्रा में होते हैं। इसके अनुसार इनका इस्तेमाल बढ़ाना ठीक है। केले में केवल विटामिन ही नहीं होते, उष्णता की दृष्टि से भी वह मूल्यवान खुराक है। इसी प्रकार खजूर, अंगूर, आम, पपीता आदि आहार की दृष्टि से बढ़िया फल हैं।

बादाम, अखरोट आदि मेवों में प्रोटीन और चिकनाहट की मात्रा अधिक रहती है। वानस्पतिक तेल और वनस्पति घी पोषक तत्त्वों और विटामिन की दृष्टि से शून्य के बराबर है। वह शरीर में केवल ईंधन का काम दे सकते हैं। गौ और भैंस के घी तथा मक्खन से जहां उष्णता की प्राप्ति होती है वहां विटामिन 'ए' और 'डी' भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त मनुष्य मिर्च और मसाले खाने का भी अभ्यस्त है। मिर्च और मसालों से हम भोजन को जायकेदार बना लेते हैं और इनसे शरीर में अन्न-खाद्य को पचाने वाले रसों का प्रवाह अधिक वेगमय हो जाता है। इसके अतिरिक्त मिर्च, धनियां, जीरा, इमली, आदि में कैरोटीन तथा विटामिन 'सी' भी रहता है। मिर्च व मसालों का अधिक प्रयोग पेट और अंतड़ियों के लिए हानिकारक होता है।

मांस और अण्डों से प्राप्त होने वाली मांसज-प्रोटीन हमारे शरीर

की मांस-मज्जा की रचना के समान होने के कारण वानस्पतिक प्रोटीन से अधिक लाभ-प्रद होती है। परन्तु मांसज भोजन जरूरी नहीं है, क्योंकि अनाज, दूध, दालें, सब्जियां, और फल खाकर भी हम सब आवश्यक पोषक तत्त्व प्राप्त कर सकते हैं। खांड प्राय पूर्णरूप से कार्बोज ही होती है और शरीर में इससे केवल ईंधन का काम ही लिया जा सकता है। आजकल जो सफेद चीनी मिलती है उसमें केरोटीन और लोहे की मात्रा गुड़ से बहुत कम होती है।

इन सबसे कहीं लाभप्रद और अधिक रक्षक-तत्त्वों से पूर्ण भोजन दूध है। यह मांसज उपज है और माता, गौ, भैंस तथा बकरी आदि से इसे प्राप्त किया जाता है। दूध में मांसज प्रोटीन, खनिज-क्षार और विटामिन ए, बी, सी, और डी प्राप्त होते हैं। सब दूधों में यह सब तत्त्व विद्यमान होते हैं; किन्तु उनका अनुपात कम अधिक रहता है। दूध में आहार के लिए आवश्यक प्रायः सभी अंश रहते हैं। भैंस के दूध में गौ के दूध से चिकनाहट, प्रोटीन और खनिज तत्त्वों की मात्रा अधिक होती है, किन्तु गौ के दूध में विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में होता है और इसका पाचन भी भैंस के दूध की अपेक्षा जल्द होता है। माता के दूध में जहां प्रोटीन और खनिज तत्त्वों की मात्रा कम रहती है वहां उष्णता देने वाले कार्बोज बहुत अधिक अनुपात में होते हैं तथा विटामिन 'ए' भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक होता है।

मक्खन निकले दूध में केवल चिकनाहट निकल जाने के अतिरिक्त शेष आहार-तत्त्वों का नाश नहीं होता। सम्पूर्ण दूध से कुछ ही कम लाभप्रद इस प्रकार का मलाई निकला दूध होता है। मक्खन निकला दूध गर्मी में देर तक बिगड़ता भी नहीं है। दूध में अधिक पोषक-तत्त्वों को पाने के लिए जानवर को रोज़ धूप में घुमाना और हरी-ताज़ी घास खिलानी चाहिए। इस से दूध में विटामिन 'ए' और 'सी' की मात्रा बढ़ेगी।

ऊपर कही गई सब बातों का सार नीचे दिये गये आँकड़ों पर

एक नज़र डालने से जाना जा सकता है। खाद्यों का यह विश्लेषण लीग आफ नेशन्स की आहार–समिति के एक प्रकाशन से लिया गया है। इसमें सब प्रकार के खाद्यों का तीन श्रेणियों में विभाजन करके उनके उत्तम प्रोटीन, खनिज क्षार, विटामिन और उनसे प्राप्त होने वाली उष्णता की मिकदार ज़ाहिर की गई है।

	उत्तम प्रोटीन	खनिज क्षार	उष्णता की मात्रा	विटामिन
क–रक्षक तत्त्वपूर्ण खाद्य				
(१) दूध	××	×××	....	ए, बी, सी, डी
(२) पनीर	××	××	....	ए, बी
(३) अण्डे	××	××	पर्याप्त	ए, बी, डी
(४) जिगर	××	××	पर्याप्त	ए, बी, डी
(५) मछली	×	....	पर्याप्त	ए, बी, डी
(६) हरी सब्जियाँ सलाद आदि	×	×××	....	ए, बी, स.
(७) ताजे फल और फलों के रस	.	×××	...	ए, यदि रंग पीला हो तो बी, सी,
(८) मक्खन अथवा घी	.	....	पर्याप्त	ए, डी
(९) मछली का तेल	.	....	...	ए, डी (दोनों की पर्याप्त मात्रा)
ख—कम रक्षक-तत्त्व-पूर्ण खाद्य				
(१) खमीर	×	×	....	बी
(२) मांस	×	नाम मात्र	....	बी, सी (थोड़ी मात्रा)
(३) जड़ की सब्जियाँ (गाजर, मूली, आलू आदि)	...	...	...	ए (पीला रंग हो तो बी, सी)

ग—रक्षक-तत्त्व-विहीन खाद्य

(१) फलियाँ आदि (मटर, दालें)	...	....	...	• बी
(२) अन्न आदि (आटा)	×	नाम मात्र	पर्याप्त	ए (कुछ)
(३) ,, मैदे की डबल रोटी	...	...	पर्याप्त	...
(४) ,, छड़े कुटे चावल	...	...	पर्याप्त	...
(५) मेवे (बादाम, अखरोट आदि)	...	नाम मात्र	पर्याप्त	बी
(६) खाँड, मुरब्बे, शहद	...	...	पर्याप्त	...
(७) वनस्पति घी, तेल	...	...	पर्याप्त	...

: ४ :

आहार-मूल्य

इस अध्याय में कई हिन्दुस्तानी खाद्यों और पेयों का विश्लेषण कर उनमें जो आहार-अनुपात पाये गये हैं वह दिये जाते हैं। यह विश्लेषण कुनूर (दक्खिन-भारत) में स्थित न्यूट्रिशन रिसर्च लैबोरेटरीज़ में डा० ऐक्रायड द्वारा किया गया है। इसे हमने एक सरकारी प्रकाशन (न्यूट्रिटिव वैल्यू आफ इण्डियन फूडस एण्ड प्लैनिंग आफ़ सैटिसफैक्टरी डायट्स) से यहां उद्धृत किया है।

इस अध्याय के आँकड़े ग्राम और मिलिग्राम की मिकदारों में दिये गये हैं। उन्हें हिन्दुस्तानी मापों में समझने के लिए मापदण्ड के निम्नलिखित आंकड़ों से सहायता मिलेगी :—

१००० ग्राम (१ किलो ग्राम)	= २.२	पौण्ड	=	८७.९ तोला
१०० ग्राम	= ३.५	औंस	=	८.७९ तोला
१ पौंड	= ४५३.६ ग्राम			
१ औंस	= २८.४	ग्राम		
११.४ ग्राम	= १	तोला		
१ सेर	= ९०७.२ ग्राम			
१ छटांक	= २	औंस	=	५६.८ ग्राम

इनके अतिरिक्त जहाँ विटामिनों का अन्तर्राष्ट्रीय परिमाण इकाइयों में स्थिर हो चुका है, वहाँ खाद्य में प्राप्य विटामिन की [illegible] इकाइयाँ लिख दी गई हैं। जहाँ कहीं आँकड़े अथवा संख्याएँ नहीं लिखी गईं उसका अर्थ है कि अभी कुनूर परीक्षणालय में उनके संबंध में विश्लेषण नहीं किया गया। कहीं कहीं × × × संकेतों का प्रयोग भी किया गया है। × × × का अर्थ है कि यह

तत्त्व पर्याप्त मात्रा में हैं, × × का अभिप्राय इस तत्त्व की साधारण मात्रा से है और × का अर्थ है कि वह तत्त्व है तो सही, पर बहुत मात्रा में नहीं है। जहाँ कहीं नाम मात्र लिखा आता है उसका अभिप्राय है कि वैज्ञानिक विश्लेषणों से वह तत्त्व लभ्य तो है, किन्तु वह इतना कम है कि उसका शरीर पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता।

अनाज

खाद्य का नाम	जलीयांश %	प्रोटीन %	चिकनाहट%	खनिज तत्व%	रेशे%	कार्बोज%	कैलशियम%	फासफोरस%	लोहा (मि. ग्रा.)%	उष्णता प्रति १०० ग्राम में	कैरोटीन १०० ग्राम में (विटा० 'ए' का अन्तर्राष्ट्रीय परिमाण)	विटामिन 'बी' १ (१०० ग्राम में अन्तर्रा० परि०)	विटामिन 'बी' २
अरारूट	१६.५	०.२	०.१	०.१	...	८३.१	०.०१	०.०२	१.०	३३४	०	....	...
बाजरा	१२.४	११.६	५.०	२.७	१.२	६७.१	०.०५	०.३५	८.८	३६०	२२०	११०	क्षीण
जौ	१२.५	११.५	१.३	१.५	३.९	६९.३	०.०३	०.२३	३.७	३३५	...	१५०	क्षीण
ज्वार	११.९	१०.४	१.९	१.८	....	७४.०	०.०३	०.२८	६.२	३५५	१३६	७५	क्षीण
कंगनी	११.२	१२.३	४.७	३.२	८.०	६०.६	०.०३	०.२९	६.३	३३४	५४	१९५	...
मकई[1]	७९.४	४.३	०.५	०.७	....	१५.१	०.०१	०.१०	०.७	८२	४२	...	...
सूखी मकई	१४.९	११.१	३.६	१.५	२.७	६६.२	०.०१	०.३३	२.१	३४२	...	...	...
जई	१०.७	१३ ६	७ ६	१ ८	३ ५	६२.८	०.०५	०.३८	३.८	३७४	नाममात्र	३२५	....
रगी (ओकड़ा)	१३.१	७.१	१.३	२ २		७६.३	०.३३	०.२७	५.४	३४५	७०	४०	क्षीण
कच्चे चावल (ओखली में कुटे)	१२.२	८ ५	० ६	० ७	...	७८.०	० ०१	०.१७	२.२	३५१	[illegible]	६०	क्षीण

कच्चे चावल (मशीन के कुटे)	१३.०	६.९	०.४	०.५	...	७९.२	०.०१	०.११	१०	३४८	०	२०	
चिउवे	१२.२	६.६	१२	१.८	...	७८.२	०.०२	०.२२	८०	३५०	...	७०	बहुत कम
मुरमुरा	१४.७	७.५	०.१	३.४	...	७४.३	०.०२	०.१६	६.२	३२८	....	७०	
साबूदाना	१२.२	०२	०२	०३	...	८७.७	०.०२	०.०१	१.३	३५१	०	...	...
सिंघाड़ा (खुश्क)	१३.८	१३.४	०८	३१	...	६८.९	०.०७	०.४४	२.४	३३६	नाममात्र	...	...
गेहूँ का आटा	१२.८	११.८	१.५	१.५	१.२	७१.२	०.०५	०.३२	५.३	३४६	१०८	१८०	+
मैदा	१३.३	११.०	०९	०.४	०.३	७४.१	०.०२	०.०९	१०	३४९	..	...	...

१—मकई के १०० ग्राम में विटामिन 'सी' की ४ मिलिग्राम मात्रा रहती है ।

दालें

नाम	जलीयांश प्र. श.	प्रोटीन प्र. श.	चिकनाहट प्र. श.	खनिज तत्त्व प्र. श.	रेशे प्र. श.	कार्बोज प्र. श.	कैलशियम प्र श.	फासफोरस प्र. श.	लोहा (मि. ग्रा.) प्र. श.	उष्णता प्रति १०० ग्राम में	कैरोटीन (१०० ग्राम मे विटामिन 'ए' का अंतर्राष्ट्रीय परिमाण)	विटामिन 'बी' १ (१०० ग्राम में अंतर्राष्ट्रीय परिमाण)	विटामिन 'बी २'
चना[1]	९.८	१७.१	५.३	२.७	३.९	६१.२	०.१९	०.२४	९.८	३६१	३१६	१००	++
उड़द[1]	१०.९	२४.०	१.४	३.४	...	६०.३	०.२०	०.३७	९.८	३५०	६४	१४०	++
बड़ा लोबिया	१२.०	२४.६	०.७	३.२	३.८	५५.७	०.०७	०.४९	३.८	३२७	६०	...	++
मूँग[1]	१०.४	२४.०	१.३	३.६	४.१	५६.६	०.१४	०.२८	८.४	३३४	१५८	१५५	++
मसूर की दाल	१२.४	२५.१	०.७	२.१	....	५९.७	०.१३	०.२५	२.०	३४६	४५०	१५०	+
सूखे मटर	१६.०	१९ ७	१ १	२ १	४.५	५६.६	०.०७	०.३०	४.४	३१५	...	१५०	...
राज माँह	१२ ०	२२ ९	१ ३	३ २	....	६० ६	० २६	० ४१	५.८	३४६	...	...	...
रवाँ (लोबिया)	१२ ७	२३.४	१ ३	२ ९	....	५९ ७	० ०८	०.४१	४.३	३४४	...	...	...
दाल अरहर[1]	१५ २	२२.३	१.७	३ ६	...	५७ २	०.१४	० २६	८.८	३३३	२२०	१५०	++
सोया बीन	८ १	४३ २	१९ ५	४ ६	३ ७	२० ९	०.२४	० ६९	११ ५	४३२	७१०	३००	++

१—चोकर रहित दालें।

पत्तेवाली सब्जियां

नाम	जलीयांश	प्रोटीन	चिकनाहट	खनिज तत्व	रेशे	कार्बोज	कैलशियम	फासफोरस	लोहा (मिलि-ग्राम)	१०० ग्राम में उष्णता	कैरोटीन (१००ग्राम में विटामिन 'ए' का अन्तरा. परिमाण)	विटामिन 'बी'१-१०० ग्राम में अं. रा. परिमाण	विटामिन 'बी २'	विटामिन 'सी'-१०० ग्राम में मि० ग्रा०
लाल चौलाई	८५.८	४ ६	०.५	३ १	...	५.७	०.५०	०.१०	२१.४	४७	२,५०० से ११,०००	१०	+	१७३
कांटेवाली चौलाई	८५.०	३.०	०.३	३.६	...	८.१	०.८०	०.०५	२२.६	४७	...	...	...	...
बास-कोमल भाग	८७.१	३.६	०.१	१.४	...	७.५	० ०२	०.०६	०.१	४७	नाममात्र	...	...	...
बथुआ (साग)	८७ ६	४ ७	० ४	३.३	...	३.७	०.१५	० ०८	४.२	३७	...	...	...	...
बन्दगोभी	९०.२	१ ८	० १	०.६	१ ०	६.३	० ०३	० ०५	० ८	३३	२,०००	५०	...	११४
गाजर के पत्ते	८३ ३	५.१	० ५	२ ८	...	८.३	० ३४	०.११	८ ८	५८				
अजवायन के पत्ते	८१ ३	६ ०	० ६	२ १	१.४	८.६	० २३	०.१४	६ ३	६४	५७६० से ,७,४७०	नाममात्र	...	६२
धनिया के पत्ते	८७.६	३.३	०.६	१.७	...	६.५	०.१४	०.०६	१०.०	४५	१०३६० से १२,६३०	...	+	१३५

मेथी	८१.८	४.६	० ६	१ ६	१.०	६ ८	०.४७	०.०५	१६.६	६७	३८६०	७०	...	२२०
चने के पत्ते	६०.६	८ २	० ५	३ ५	...	२७ २	० ३१	० २१	२८ ३	१४६	६७००	...	...	...
सलाद	६२ ६	२ १	०.३	१ २	० ५	३.०	० ०५	० ०३	२.४	२३	२२००	६०	...	१५
पोदीना	८३.०	४ ८	०.६	१.६	२.१	८ ०	० १०	० ०८	१५ ६	५७	२७००	...	...	...
नीम के कोमल पत्ते	५९ ४	११.६	३.०	२ ६	२.२	२१ २	० १३	०.१६	२५.३	१५८	४५६०	...	...	...
मकोय	८२.१	५ ६	१ ०	२.१	...,	८ ६	०.४१	० ०७	२०.५	६८	...	...	...	११
पालक	६१.७	१.६	०.६	१ ५	....	४.०	०.०६	० ०१	५.०	३२	२६३० से ३५००	'७०	...	४८
सोए के पत्ते	७६ ५	६.०	०.५	३ २	...	१०.८	०.१८	०.१६	८.०	७२				

जड़ की सब्जियां

नाम	जलीयांश	प्रोटीन	चिकनाहट	खनिज तत्व	रेशे	कार्बोज	कैलशियम	फासफोरस	लोहा (मिलिग्राम)	उष्णता की मात्रा (१०० ग्राम में)	कैरोटीन (१०० ग्राम में विटामिन 'ए' का अंतर्राष्ट्रीय परिमाण)	विटामिन 'बी'१ (१०० ग्राम में अ मा परिमाण)	विटामिन 'सी' (१०० ग्राम में मिलिग्राम)
चुकन्दर	८३.८	१.७	० १	० ८	..	१३.६	० २०	० ०६	१.०	६२	नाममात्र	७०	८८
गाजर	८६.०	० ९	० १	१ १	१.२	१०.७	० ०८	० ०३	१ ५	४७	२०२० से ४३००	६०	३
अरबी	७३ १	३ ०	०.१	१ ७	...	२२.१	० ०४	० १४	२ १	१०१	४०	८०	नाममात्र
प्याज	८६.८	१ २	० १	०.४	...	११ ६	० १८	० ०५	०.७	५१	...	४०	११
आलू	[illegible]५.७	१.६	०.१	० ६	..	२२ ९	० ०१	० ०३	० ७	९९	४०	२०	१७
सफेद मूली	९४.४	०.७	०.१	० ६	...	४ २	० ०५	० ०३	० ४	२१	३	६०	१५
शाकरकन्दी	६६.५	१.२	० ३	१.०	..	३१.०	० ०२	०.०५	० ८	१३२	१०	....	२४
जिमीकन्द	७८.७	१.२	० १	० ८	० ८	१८.४	० ०५	०.०२	० ६	७९	४३४	.२०	नाममात्र
रतालू	६९.९	१.४	०.१	१.६	....	२७.०	० ०६	० ०२	१ ३	११५	....	२४	नाममात्र

शेष सब्जियां

नाम	जलीयांश प्र० श०	प्रोटीन प्र० श०	चिकनाहट प्र श०	खनिज तत्व प्र श०	रेशे प्र० श०	कार्बोज प्र० श०	कैलशियम प्र. श.	फासफोरस प्र. श.	लोहा प्र. श. (मि. ग्रा.)	उष्णता प्रति १०० ग्राम	कैरोटीन (१०० ग्राम में विटामिन 'ए' का अ. रा. परिमाण)	विटामिन 'बी' १ (१०० ग्राम में अ० रा० परि०)	विटामिन 'बी' २	विटामिन 'सी' (१०० ग्रा. में मि. ग्रा.)
करेला	९२.४	१.६	०.२	०.८	० ८	४ २	०.०२	०.०७	२.२	२.५	२१०	२४	थोड़ा	८८
बैंगन	९१.५	१.३	०.३	०.५	..	६ ४	०.०२	०.०६	१ ३	३४	५	१५	+	२३
सेम फली	८२.४	४.५	०.१	१.०	.	१०.०	०.०५	०.०६	१ ६	५६		...	...	१२
घीया	९६.३	०.२	०.१	०.५	...	२ ६	०.०२	१.	० ७	१३	नाममात्र	...	...	...
गोभी	८९.४	३.५	०.४	१ ४	...	५.३	०.०३	०.०६	१ ३	३६	३८	११०	...	६६
अरवी	९३.४	०.३	०.३	१ २	० ६	४ २	०.०६	०.०२	० ५	२१			..	...
फ्रेंच बीन्स	९१.४	१.७	०.११	०.५	१ ८	४.५	०.०५	०.०३	१ ७	२६	२२१	२६	...	१४
आमला	८१.२	०.५	०.१	० ७	३ ४	१४.१	०.०५	०.०२	१ २	५६	...	...	...	××
भिण्डी	८८.०	२.२	०.२	० ७	१ २	७ ७	०.०३	०.०८	१ ५	४१	५८	२१	+	१६

लहसन	७८.६	१.८	०.१	०.७	१.३	१७.२	०.०५	०.०७	२.३	७७	३०	७५	११
प्याज की डण्डी	८७.१	०.६	०.२	०.८	१.६	८.६	०.०५	०.०५	७.५	४१	...	...	...
मटर	७२.१	७.२	०.१	०.८	...	१६.८	०.०२	०.०८	१.५	१०६	१३६	१२०	६
कद्दू	९२.६	१.४	०.१	०.६	...	५.३	०.०१	०.०३	०.७	२८	८४	२०	२
सरसों की डण्डी	९१.४	३.१	०.१	१.४	...	४.०	०.१०	०.१०	१.२	२६	...	...	...
पालक	९२.४	०.६	०.१	१.८	...	३.८	०.०६	०.०२	१.३	२०	...	...	३
टिमाटर	९१.८	१.६	०.१	०.७	...	४.५	०.०२	०.०४	२.४	२७	३२०	२३	३१
शलजम	९१.१	०.५	०.२	०.६	...	७.६	०.०३	०.०४	०.४	३४	नाममात्र	४०	४३
टिण्डे	९२.३	१.७	०.१	०.६	...	५.३	०.०२	०.०३	०.६	२६	२८	...	

गर्म मेवे आदि

नाम	जलीयांश %	प्रोटीन %	चिकनाहट %	खनिजतत्व %	रेशे %	कार्बोज %	कैलशियम %	फास फोरस%	लोहा % (मिलीग्राम)	उष्णता (१०० ग्राम में)	कैरोटीन (१०० ग्रा० मे विटा. ए का अ० रा० परिमाण)	विटामिन 'बी१' (१०० ग्रा० मे अ० रा० परिमाण)	विटामिन 'बी २'	विटामिन 'सी' (१०० ग्रा मे मि.ग्रा).
बादाम	५.२	२०.८	५८ ६	२ ६	१.७	१०.५	०.२३	०.४६	३.५	६५५	नाम मात्र	८०	.	०
काजू	५.६	२१.२	४६.६	२.४	१.३	२२.३	०.०५	०.४५	५.०	५९६	१००	.	×	०
नारियल	३६.३	४.५	४१.६	१.०	३.६	१३.०	०.०१	०.२४	१ ७	४४४	नाम मात्र	१५	क्षीण	१
तिल	५ १	१८ ३	४३.२	५ २	२.६	२५.२	१.४५	०.५७	१० ५	५६४	१००			०
मूंगफली	७.६	२६ ७	४०.१	१.६	३.१	२०.३	०.०५	०.३६	१.६	५४६	६३	३००	×	०
किशमिश	८ ५	२२ ०	३६ ७	४ २	१ ८	२३ ८	०.१६	० ७०	१७ ६	५४१	२७०	.	नाम	मात्र
पिस्ता	५ ६	१६ ८	५३ ५	२.८	२ १	१६.२	० १४	०.४३	१३.७	६२६	२४०		.	०
अखरोट	४ ५	१५.६	६४ ५	१ ८	२ ६	११ ०	० १०	०.३८	४.८	६८७	१०	१५०	.	०

मिर्चे मसाले आदि

नाम	जलीयांश प्र. श.	प्रोटीन प्र. श.	चिकनाइट प्र. श.	खनिज तत्व प्र श.	रेशे प्र. श.	कार्बोज प्र. श.	कैलशियम प्र श.	फासफोरस प्र. श.	लोहा प्र. श. (मि॰ ग्रा॰)	उष्णता (१०० ग्राम में)	कैरोटीन (१०० ग्राम में वि. 'ए' का श्र. रा परि.)	विटामिन 'सी' (१०० ग्रा में मि॰ ग्रा.)
हींग	१६.०	४०	१ १	७.०	४ ०	६७.८	०.६९	०.०५	२२.२	२९७	...	०
इलायची	२०.०	१०.२	२ २	५ ४	२० १	४२.१	०.१३	०.१६	५ ०	२२६	...	०
हरी मिर्च	८२.९	२ ९	० ६	१ ०	६ ८	६.१	०.०३	०.०८	१.२	४१	४५५	१११
लाल मिर्च	१०.०	१५.९	६.२	६ १	३० २	३१.६	०.१६	०.३७	२ ३	२४६	५७६	५१
लौंग	२३.३	५ २	८ ९	५ २	९ ५	४१.६	०.७४	०.१०	४.९	२९३	...	०
धनिया	११.२	१४.१	१६.१	४ ४	३२ ६	२१.६	०.६३	०.३७	१७.९	२८८	१५७०	नाममात्र
जीरा	११.९	१८.७	१५.०	५.८	१२.०	३६.६	१.०८	०.४९	३.१०	२५६	८७०	३
मेथी के बीज	१३.७	२६.२	५ ८	३ ०	७.२	४४.१	०.१६	०.३७	१४.१	३३३	१६०	०

अदरक	०.९	२३	०.९	१२	२.४	१२.३	०.०२	०.०६	२.६	६७	६७	६
जावित्री	१५.९	६५	२४.४	१६	३८	४७.८	०.१८	०.१०	१२.६	४३७	...	०
राई	८५	२२.०	३९.६	४२	१.८	२३.३	०.४९	०.१०	१७.९	५४०	२७०	नाममात्र
जायफल	१४.३	७५	३६.४	१०	११.६	२८.५	०.१२	०.२४	४६	४७२	नाममात्र	०
अजवायन	८९	१८.४	१८.१	७१	११.२	३८.६	१.४२	०.३०	१४.६	३७९	...	...
काली मिर्च	१२.९	११.५	६८	४४	१४.१	४९.५	०.४६	०.२०	१६.८	३०५	...	...
इमली,[1]	२०९	३१	१०	२९	५६	६६.५	०.१७	०.११	१०.९	२८७	१००	३
हल्दी	१३१	६३	५१	३५	२.६	६४	०.१५	०.२८	१८.६	३४९	५०	०

१—केवल गूदा

फल

नाम	जलीयांश प्र. श.	प्रोटीन प्र. श.	चिकनाहट प्र. श.	खनिज तत्व प्र. श.	रेशे प्र. श.	कार्बोज प्र. श.	कैलशियम प्र. श.	फासफोरस प्र. श.	लोहा प्र. श. (मिलिग्राम)	उष्णता (१०० ग्राम में)	कैरोटीन (१०० ग्रा. में विटामिन 'ए' का ग्र. रा. परिमाण)	विटामिन 'बी' १ (१०० ग्रा में ग्र रा. परिमाण)	विटामिन 'सी' (१०० ग्राम में मि. ग्रा.)
सेब	८५.६	० ३	० १	०.३		१३.४	०.०१	०.०२	१ ७	५६	नाममात्र	४०	२
केला	६१.४	१ ३	० २	० ७	...	३६.४	०	०.०५	० ४	१५३	नाममात्र	५०	१
रसभरी	८२.७	१ ८	०.२	० ६	३.२	११.५	०.०१	०.०६	१ ८	५५	...	...	४६
खजूर	२६.१	३.०	०.२	१ ३	२ १	६७.३	०.०७	०.०८	१०६	२८३	६००	३०	नाममात्र
अंजीर	८०.८	१ ३	०.२	० ६	...	१७.१	०.०६	०.०३	१.२	७५	२७०	...	२
अंगूर	८१.५	० ८	० १	० ४	३ ०	१०.२	०.०३	०.०२	०.४	४५	१५	नाममात्र	३
चकोतरा	९२.०	० ७	०	० २	...	७ १	०.०२	०.०२	०.२	३२	..	४०	३१
अमरूद	७६.१	१.५	० २	० ८	६ ९	१४.५	०.०१	०.०४	१.०	६६	नाममात्र	.	२९९
जामुन	७८.२	० ७	० १	० ४	० ९	१९.७	०.०२	०.०१	१ ०	८३	..	...	...

मीठा	८५.०	१.०	० ६	०.३	१.७	११.१	०.०७	०.०१	२.३	५१	नाममात्र	...	६६
नींबू	८४.६	१ ५	१.०	०.७	१.३	१०.९	०.०६	०.०२	०.३	५६	२६	...	६३
लौकाट	८७.४	० ७	०.१	०.५	०.६	१०.२	०.०३	०.०२	०.७	४६	...	...	...
आम कच्चा	९०.०	०.७	०.१	०.४	...	०.८	०.०१	०.०२	४.५	३९	४१०	...	३
आम पक्का	८६.१	० ६	० १	० ३	१ १	११.८	०.०१	०.०२	०.३	५०	४८००	...	१३
तरबूज़	९५.७	० १	० २	० २	...	३ ८	०	०.०१	०.२	१७	नाममात्र	...	१
सन्तरा	८७.८	० ९	० ३	०.४	...	१०.६	०.०५	०.०२	०.१	४९	३५०	४०	६८
तर	९२.७	०.६	०	० २	...	६ ५	०.०१	०.०२	०.५	२८	...	..	४
पपीता	८९.६	० ५	०	० ४	...	९ ५	०.०१	०.०१	०.४	४०	२०२०	..	४६
आड़ू	९०.१	१ ५	० २	०.६	...	७.६	०.०१	०.०३	१.७	३८	नाममात्र	...	१
नाशपाती	८६.९	० २	० १	०.३	१.०	११.५	०.०१	०.०१	०.७	४०	१४	...	नाममात्र
अनानास	८६.५	० ६	०	० ५	० ४	१२.०	०.०२	०.०१	० ९	५०	६०	..	६३
केला	७३ ४	१.१	० १	० ७	...	२४.७	०.०१	०.०३	० ५	१०४	१२४	.	६
लाल केला	७४.१	१ ३	० १	० ८	.	२३ ४	०.०१	०.०२	० ६	१०१	३५०	...	...
अलूचा	८९.८	०.७	०.२	० ४	...	८.९	०.०१	०.०२	० ५	४०	२३०	४०	१

अनार	७८.०	१.९	०	०.७	५.१	१४.६	०.०१	०.०७	० ३	६५	०	...	१६
स्ट्राबरी	८७.८	०.७	०.२	०.४	१ १	९ ८	०.०३	०.०३	१ ८	४४	...	...	५२
बेर	८५.९	० ८	० १	०.४	...	१२.८	०.०३	०.०३	० ८	५५	७०	...	...
कमरख	९३.९	०.५	० २	० २	०.४	४ ८	०.०१	०.०१	० ६	२३	२४०	...	...
चकोतरा बेदाना	८८.५	१ ०	०.१	०.४	...	१०.०	०.०३	०.०३	०.२	३२		..	३१

अण्डे और मांस मछली

नाम	जलीयांश प्र. श.	प्रोटीन प्र. श.	चिकनाहट प्र. श.	खनिज तत्व प्र.श.	कार्बोज प्र. श.	कैलशियम प्र. श.	फासफोरस प्र. श.	लोहा प्र. श. (मिलिग्राम)	उष्णता (१०० ग्रा में)	कैरोटीन (१०० ग्रा. में विटा 'ए' का अ. रा. परि.)	विटामिन 'ए' (१०० ग्रा. में अ.रा. परिमाण)	विटामिन 'बी' १ (१०० ग्रा. में अ. रा. परिमाण)	विटामिन 'बी' २
केकड़ा	८३.५	८.६	१.१	३.२	३.४	१.३७	.०१५	२१.२	५६	१३००	नाममात्र	.	...
बत्तख का अण्डा	७१.१	१३.५	१३.७	१.०	०.७	०.०७	०.२६	३.०	१८०	६००	१२३३	...	...
मुर्गी का अण्डा	७३.७	१३.३	१३.३	१.०		०.०६	०.२७	२.१	१७३	१०००	११६७	...	...
मछली	७८.४	२२.६	०.६	०.१		०.०२	०.१६	०.६	६१	६०	२५.६	...	थोड़ा
भेड़ का कलेजा	७०.४	१९.३	७.५	१.५	१.४	०.०१	०.३८	६.३	१५०	०	२२३०८	१२०	...
बकरे का मांस	७१.५	१८.५	१३.३	१.३	...	०.१५	०.१५	२.५	१०५	नाममात्र	३०.८	६०	...
झींगा	७.७६	२०.८	०.३	१.४	...	०.०६	०.२४	०.८	८६	नाममात्र	नाममात्र	३०	.

दूध तथा दूध से बनी वस्तुएं

नाम	जलीयांश प्र. श.	प्रोटीन प्र. श.	चिकनाहट प्र. श.	खनिज तत्व	कार्बोज प्र. श.	कैल्शियम प्र. श.	फास्फोरस प्र. श.	लोहा प्र. श. (मिलिग्राम)	उष्णता (१०० ग्रा. में)	विटामिन 'ए' (१०० ग्रा. में रा. परिमाण)	कैरोटीन (१०० ग्रा. में विटा 'ए' का श्र. रा. परि.	विटामिन 'बी' १ (१०० ग्रा. में श्र. रा. परि०)	विटामिन 'बी' २
गाय का दूध	८७.६	३.३	३.६	०.७	४.८	०.१२	००.९	० २	६५	१८०	नाममात्र	...	+ +
भैंस का दूध	८१.०	४.३	८.८	०.८	५.१	०.२१	०.१३	०.२	११७	१६२	नाममात्र	...	..
बकरी का दूध	८५.२	३.७	५.६	०.८	४.७	०.१७	०.१२	० ३	८४	१८२	नाममात्र	.	.
माता का दूध	८८.०	१.०	३.९	०.१	७.०	०.०२	०.०१	०.२	६७	२०८	नाममात्र	...	.
दही	९०.३	२.९	२.९	०.६	३.३	०.१२	०.०३	०.८	१५	१३०	नाममात्र	+ +	+ +
लस्सी	९७.५	०.८	१.१	०.१	०.५	०.०३	०.०९	०.३	५१	नाममात्र	०	...	+ +
मक्खन निकला दूध	९२.१	२.५	०.१	०.७	४.६	०.१२	०.०९	०.२	२६	...	...	...	..
पनीर	४०.३	२४.१	२५.१	४.२	६.३	०.७९	०.५२	२.१	३४८	२७३	...	•...	...
खोआ भैंस के दूध का	३०.६	१४.६	३१.२	३.१	२०.५	०.६५	०.४२	५ ८	४२१	..		.	.

विविध खाद्य तथा पेय

नाम	जलीयांश प्र०श०	प्रोटीन प्र०श०	चिकनाहट प्र०श०	खनिज तत्व प्र०श०	रेशे प्र०श०	कार्बोज प्र०श०	कैल्शियम प्र०श०	फासफोरस प्र०श०	लोहा प्र०श० (मिलिग्राम)	उष्णता (१०० ग्रा में)	विटामिन 'ए' (१०० ग्रा. में अ० रा० परिमाण)	कैरोटीन (१०० ग्रा. में विटा. 'ए' का अ० रा. परिमाण)	विटामिन 'सी' (१०० ग्रा० में मि० ग्रा०)
पान	८५.४	३.१	०८	२ ३	२.३	६ १	०.२३	०.०४	५ ७	४४	०	६६२५	५
गुड़	३ ६	० ४	० १	०.६	....	९५.०	०.०८	० ०४	११ ४	३८३	०	२८०	०
पापड़	२० ३	१८८	० ३	...		५२.४	० ०८	०.३०	१७.२	२८८	०	नाम मात्र	०
मछली का तेल	.	...	१०० ०	...	....	...	...	....		९००.०	४५००० से १६८०००	०	०
हैलीबट मछली का तेल	....	...	१००.०	....	...	...	.	..		९००.०	३६०००००	०	०
लाल खजूर का तेल	...	....	१०० ०	....	....	.	..	..	....	९०० ०	७	४०००० से ५७०००	०
सूखा खमीर	१३.६	३९.५	०.६	७ ०	०.२	३९ १	०.४४	१.४६	४३.७	३२०	—	११०	
ईख का रस	९०.२	०.१	०.२	० ४	....	९.१	०.०१	०.०१	१.१	३९	—	१०	

कुछ अन्न खाद्यों में पाई जाने वाली प्रोटीन का जीवन-तत्त्व (बाय-लोजिकल मूल्य) निम्नलिखित आँकड़ों से जाना जायेगा। अधिक जीवन-तत्त्व की प्रोटीन ही अधिक लाभप्रद होती है। आहार के निश्चय में प्रोटीन की मात्रा निश्चय करते समय इसका ध्यान ज़रूरी है :—

खाद्य	जीवन-तत्त्व	खाद्य	जीवन-तत्त्व
जौ	७१	अलसी	७८
बाजरा	८३	अण्डे	९४
ज्वार	८३	दूध	८५
कंगनी	७७	कोको	८७
मकई	६०	आलू	६७
रगी ओकड़ा	८६	शकरकन्दी	७२
चावल (अनछड़े)	८०	बैंगन	७१
गेहूँ	६७	ग्वार की फली	५१
चने	७६	भिण्डी-तोरी	८२
उड़द	६४	काजू	७२
मूँग	५१	गिरी	५८
अरहर	७४	तिल	६७
मसूर	४१		
सोयाफली	५४		
चौलाई का साग	७२		
बन्द गोभी के पत्ते	७६		

: ५ :

खुराक की मिकदार

हमने जुदा-जुदा आहार-तत्त्वों की रचना जान ली है और उन आहार-तत्त्वों से शरीर को क्या क्या लाभ होते हैं इसका भी परिचय प्राप्त कर लिया है। अब सवाल यह है कि मनुष्य को प्रतिदिन उष्णता की उचितमात्रा प्राप्त करने के लिए किस मात्रा में कौन-कौन खाद्य ग्रहण करने चाहिए।

खाद्य और उससे उत्पन्न होने वाली उष्णता का परिमाण कितनी ही बातों पर निर्भर होता है—जैसे देश की जलवायु, मनुष्य की उम्र, उसका काम कड़ी मेहनत का है या आराम से बैठे रहने का, इत्यादि। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी के लिए उष्णता की अलग-अलग मात्रा चाहिए। केवल जीने की क्रिया से भी शक्ति का ह्रास होता है। परिश्रम करने से अधिक अनुपात में शक्ति व्यय होती है और नवजीवन की ओर बढ़ते हुए सदा खेलने-कूदने वाले बच्चे भी बहुत तेजी से शक्ति खर्च करते हैं। गर्भ धारण किये हुये स्त्रियां या दूध पिलाती हुई माताएं भी इसी प्रकार दूसरी स्त्रियों से अधिक शक्ति व्यय करती हैं। इस शक्ति-ह्रास को पूरा करने के लिए तथा प्रतिदिन नये सिरे से शक्ति सञ्चित करने के लिए हम हर रोज भोजन खाते हैं जो हमें ठीक मिकदार में शक्ति और उष्णता देता है।

अनुमान लगाया गया है कि औसत मनुष्य को, जो प्रतिदिन औसत काम करता हो, २८०० से ३००० तक उष्णता की मात्रा मिलनी चाहिए। स्त्रियों को मनुष्यों से कम उष्णता काफी होती है। उन्हें २५०० उष्णता की मात्रा ठीक है। परन्तु स्त्रियों को गर्भावस्था में अपनी औसत उष्णता से २५ फीसदी अधिक उष्णता मिलनी

चाहिये, जिससे उसका अपना स्वास्थ्य भी बना रह सके और सन्तान को भी उष्णता की आवश्यक मात्रा मिलती रहे। गर्भावस्था के आखिरी महीनो में और दूध पिलाने के काल में स्त्रियों के उन आहार-तत्वों की मात्रा, जिसे वह साधारण तौर पर ग्रहण करती है, इस-प्रकार बढ़ा देनी चाहिए। प्रोटीन, फासफोरस, और लोहा ५० फीसदी, चिकनाहट १० फीसदी तथा कैलशियम १०० फीसदी। बच्चों के लिए उष्णता की आवश्यक मात्रा १ से १२ वर्ष की आयु तक अलग-अलग रूप में ६०० से २१०० तक रहती है। १४ वर्ष के बाद बच्चों को एक युवक के समान उष्णता प्राप्त होनी चाहिये। एक वर्ष तक बच्चे के लिए जो मात्राएं आवश्यक हैं वह निम्नलिखित है :—

उम्र		उष्णता
पहला	हफ्ता	२००
पहला	महीना	३५०
दूसरा	,,	४००
तीसरा	,,	४५०
पांचवां	,,	६००
आठवां	,,	७००
बारहवां	,,	८००
२ से ५ साल तक		१०००
६ से ७ साल तक		१२००
८ से ६ साल तक		१६००
१० से ११ साल तक		१८००
१२ से १३ साल तक		२१००

बूढ़ों को, उनकी शक्ति कम खर्च होने के कारण, कम उष्णता की जरूरत होती है और उसके अनुसार उन्हें खाद्य की कम मात्रा ही पर्याप्त होती है।

अब प्रश्न यह है कि उष्णता की इन मात्राओं को किस अनुपात से

खुराक के किन जुदा-जुदा आहार-तत्त्वों से प्राप्त करना चाहिए ? प्रोटीन और कार्बोज के हर 'ग्राम' से उष्णता की ४-४ और चिकनाहट से इसकी ९ मात्राएं प्राप्त होती हैं । वैज्ञानिक खोज ने निश्चय किया है कि हमें उष्णता आहार-तत्त्वों के निम्नलिखित ढङ्ग से प्राप्त होनी चाहिए :—

प्रोटीन से १० से १५%, चिकनाहट से ३५%, कार्बोजों से ५० से ५५% । लीग आफ नेशन्स की स्वास्थ्य समिति के अनुसार शरीर के १ किलोग्राम भार के पीछे प्रोटीन का आहार १ ग्राम से नहीं घटना चाहिए । इसके अनुसार हमें हर रोज प्रोटीन के ७५ ग्राम खाने चाहिएं । बच्चों को शरीर के १ किलोग्राम वज़न के पीछे ३.५ ग्राम प्रोटीन खानी चाहिए । इनमें मांसज प्रोटीन का, अर्थात् दूध, पनीर, अण्डे और मांस का, अनुपात कम-से कम आधा अवश्य होना चाहिए, बाकी वानस्पतिक प्रोटीन हो तो ठीक है । चिकनाहट के प्रति-दिन १०० से २०० ग्राम मिलने चाहिएँ । अगर चिकनाहट मांस से पैदा होने वाली होगी यानी शुद्ध घी या मक्खन, तो इसकी कम मात्रा से ही काम चल जायेगा । किन्तु यदि चिकनाहट वानस्पतिक हो तो उसकी अधिक मात्रा प्रयुक्त होनी चाहिए । जैसा कि हम जानते हैं घी और मक्खन में विटामिन 'ए' और 'डी' भी पाये जाते हैं, इसलिए वही बेहतर और ज़रूरी है । कार्बोजों का प्रतिदिन खाद्य-उपयोग कम-से-कम ३०० ग्राम होना चाहिए । इन तत्त्वों से हमें उष्णता इस प्रकार मिलेगी :—

प्रोटीन	७५ × ४	= ३००
मांसज चिकनाहट	१०० × ९	= ९००
कार्बोज	३०० × ४	= १२००
	जोड़	= २४००

इसके अलावा शेष अन्न-तत्त्वों से हमें इतनी उष्णता मिल जायेगी हमारे लिए ज़रूरी उष्णता पूरी हो जाय । खनिज तत्त्वों से हमें प्रतिदिन कैलशियम ०.६८ ग्राम, फासफोरस ०.८८ ग्राम, लोहा ०.१५

ग्राम, आयोडीन लगभग १ मिलिग्राम मिलनी चाहिए। कैलशियम का उचित परिमाण प्रतिदिन ४०० से ८०० ग्राम दूध पीकर अथवा १००० से २००० ग्राम गेहूँ के सेवन से मिल जाता है। शैशवावस्था में इन खनिज-तत्त्वों की ज़रूरत अधिक होती है, उसके अनुसार बच्चों को प्रतिदिन कैलशियम १ ग्राम, फासफोरस १.५ ग्राम, लोहा उन्हें प्राप्त उष्णता की प्रति १०० मात्रा के पीछे ०.७५ मिलिग्राम ज़रूर मिलना चाहिए। स्त्रियों को गर्भावस्था में अपनी औसत खपत से इन तत्त्वों की मात्रा बढ़ा लेनी चाहिए।

इसके अलावा उन्हीं खाद्यों का चुनाव करना चाहिए जिनसे हमें विटामिन भी मिलते रहें। लीग आफ नेशन्स की आहार-समिति के अनुसार हमें विटामिन इन मात्राओं मिलने चाहिए :—

(१) विटामिन 'ए' ४००—५५०० अन्तर्राष्ट्रीय परिमाण (२) विटामिन 'बी१' १२५—२०० अन्तर्राष्ट्रीय परिमाण (३) विटामिन 'बी२' ५००—७५० अन्तर्राष्ट्रीय परिमाण और (४) विटामिन 'सी' ७००—१००० अन्तर्राष्ट्रीय परिमाण। इन विटामिनों को और विटामिन 'डी' की मात्रा प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन १० छटांक दूध, आधी छटांक पनीर, आधी छटांक घी या मक्खन, १ सन्तरा या १ टिमाटर और साथ में सलाद या कुछ कच्ची हरी पत्तेदार सब्जियां काफी हैं। आहार की इन मात्राओं के साथ मनुष्य को नित्य ६—७ गिलास पानी पीना भी स्वास्थ्य के लिए ज़रूरी है।

प्रोटीन, कार्बोजों आदि का यह परिमाण हमें किन किन खाद्यों और पेयों की किस-किस मात्रा से मिलना चाहिए, इसका निश्चय हर व्यक्ति को अपनी अपनी निजी पसन्द के अनुसार करना चाहिए। जो लोग मांसादि का व्यवहार नहीं करते, वह दूध, घी, पनीर जैसे मांसज तत्त्वों से सब आहार-तत्त्व प्राप्त कर सकते हैं। पिछले अध्याय के आँकड़े आदि देखकर अपना उचित भोजन नियत किया जा सकता है। सर राबर्ट मैक्करिसन ने उचित भोजन का एक उदाहरण पेश किया है :—

खाद्य	परिमाण (औंस)	प्रोटीन (ग्राम)	चिकनाहट (ग्राम)	कार्बोज (ग्राम)	उष्णता की मात्रा
आटा१	१२	४६.८०	६.४८	२४४.२	१२२२
चावल, घर में छड़े हुए	६	१३.८०	०.५१	१३३.८	५६५
मांस२	२	११.६४	३.३६	...	८४
दूध	२०	१८.८०	२०.४०	२७.२	३६०
वनस्पति तेल	१	...	२८.००	..	२५२
घी	१.५	...	३४.६०	...	३१२
जड़ वाली सब्जियां	८	४.४०	०.३६	३१.८	१४८
हरी पत्तेदार सब्जियाँ	८	२.१०	०.२४	१०.२	५६
फल	४	०.१६	०.८८	२०.८	९२
दालें	१	६.५०	०.३३	१६.२	१००
योग	६३.५	१०५.५०	९६.४२	४८४.२	३२२१
१०½ जो नष्ट हो जाता है कम करें	६.३	१०.५	९.६४	४८.४	३२२
शेष योग	५७.२	९५.००	८६.७८	४३५.८	२८१६

१ छटांक = २ औंस = ६४ ग्राम

(१) जो आदमी अण्डे, मछली आदि का प्रयोग करते हैं, वह आटा चावल आदि की मात्रा उचित अनुपात में कम कर दें। (२) मांस न खाने वाले इसके स्थान पर ५ औंस दूध अधिक लें अथवा कोई ऐसा खाद्य जिसमें रक्षक-तत्त्व पूर्ण मांसज प्रोटीन हों—जैसे पनीर आदि १ औंस ग्रहण कर सकते हैं।

इसमें सर राबर्ट मेक्करिसन ने चिकनाहट की मात्रा कम और प्रोटीन तथा कार्बोजों की बहुत ज्यादा रखी है। इसको कम-अधिक किया जा सकता है। परन्तु आहार का यह जो आदर्श रखा गया

है वह बहुत महंगा है। औसत हिन्दुस्तानी इसे प्राप्त नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान की गरीबी के कारण इस प्रकार जो आहार में क्षति होती है उसकी हम पीछे विवेचना करेंगे।

आहार की इस एक मिसाल के अलावा डा० ऐक्रायड द्वारा प्रस्तावित एक उदाहरण नीचे लिखा जाता है :—

चावल १० औंस, अनाज ५ औंस, दूध ८ औंस, दालें ३ औंस, जड़ की सब्जियां ६ औंस, हरी पत्तेदार सब्जियां ४ औंस, चिकनाहट २ औंस, फल ३ औंस।

इस आहार से उष्णता की २६०० मात्राएं मिल सकेंगी। इस उष्णता के साथ-साथ इस आहार में सभी आवश्यक खनिज-क्षार और विटामिन भी प्राप्य हैं। परन्तु औसत हिन्दुस्तानी की खुराक में दूध, फल, सब्जियों और चिकनाहट का अंश नहीं होता। अपनी गरीबी के कारण वह इन महंगी वस्तुओं को खरीद नहीं सकता। उत्तरी हिन्दुस्तान को छोड़ कर और सब जगह भोजन का अधिकांश चावलों पर ही निर्भर है जिनसे आवश्यक और रक्षक आहार-तत्त्व नहीं मिलते। जो केवल चावल खा कर ही निर्वाह करने के आदी हैं उन्हें अपने भोजन में बाजरा और ज्वार जैसे अनाज को भी शामिल करने की प्रेरणा की जानी चाहिये।

: ६ :

भारत में खाद्य संकट

हमने देखा है कि आमतौर पर औसत काम करने वाले इन्सान को रोजाना खुराक से २८०० से ३००० उष्णता मिलनी चाहिए। परन्तु भारत में राशन की योजना द्वारा सिर्फ १०००-१२०० उष्णता मिल रही है। यह सचाई और भी भयावह हो जाती है जब हम यह सोचते हैं कि औसत हिन्दुस्तानी की ८० फीसदी खुराक सिर्फ आटे और चावल से ही पूरी होती है। उसके भोजन में रक्षक-तत्त्वों का नितान्त अभाव है। सब्जियां, फल, दूध, घी उसके भाग्य में नहीं हैं। देखा जाय तो एक हिन्दुस्तानी को खाद्य की वही मात्रा प्राप्त होती है जो फासिस्ट जर्मनी में 'बेल्सन' के कैदियों को मिलती थी और इस तरह जो भूखे रह कर तिल-तिल कर प्राण त्याग देते थे।

पर हमारे देश में औसत हिन्दुस्तानी को प्राप्य खाद्य की इस कमी का दोष रसदबन्दी के सिर नहीं मढ़ा जा सकता। जिस समय इस रसदबन्दी द्वारा रोजाना एक पौंड या आध सेर अनाज लिया जा सकता था तब सरकारी आंकड़ो के अनुसार अलग-अलग क्षेत्रों में ४० से ८५ फीसदी तक ही अनाज खरीदा जाता था। राशन के १२ औंस हो जाने पर भी खरीदे जा रहे अनाज की मात्रा ६० फीसदी है। स्पष्ट है कि हम हिन्दुस्तानी खाद्य की इतनी कम खपत के आदी हैं। इस दृष्टि से भारत की समस्या सिर्फ गरीबी, हमारी खरीदने की नीचे दर्जे की क्षमता की ही है। हमारे देश में अनाज की कमी का सवाल तो है ही, पर औसत हिन्दुस्तानी के दोषपूर्ण, असन्तुलित भोजन का सवाल भी उतना ही गम्भीर और आवश्यक है। एक ही

सवाल के इन दोनों पहलुओं का मूल कारण कितने ही कारणों से पैदा होने वाली हमारे देश की अथाह निर्धनता है।

हमारे देश में शान्ति के दिनों में साल मे आमतौर से १५ लाख टन के करीब अनाज (खासकर चावल) की आयात बाहर से हुआ करती थी। लड़ाई की हालत से यह आयात रुक गयी। लड़ाई के बाद दैव कोप से बरसात की कमी से खरीफ और रबी दोनों फसलें नष्ट हो गईं और इस तरह दक्खिन और मध्य हिन्दुस्तान की उपज से ३० लाख टन चावल और बाजरा आदि तथा उत्तरी हिन्दुस्तान से ४० लाख टन अनाज नही मिल सका। भारत की ६ करोड़ टन की औसत उपज में इस तरह ७० लाख टन की, और आयात से प्राप्य चावलों की मात्रा मिला कर यह कमी ८५ लाख टन के लगभग हो गई। यह कमी शायद साधारण सालो में विदेशों से खाद्य मंगवा करके पूरी हो जाती; पर ससार के चार ज्यादा अनाज उपजाने वाले देशों (अमरीका, आस्ट्रेलिया, कैनाडा, अर्जेंएटाइना) को छोड़कर प्रायः सब क्षेत्रों में ही अनाज की कमी हो रही थी। अभी लड़ाई बन्द ही हुई थी, थका हुआ इन्सान सुख-चैन की सांस लेने को शान्ति के स्वप्न देख रहा था कि अनाज की कमी की कठोर सचाई एकाएक उसके आगे प्रगट हो गयी। लड़ाई के दिनों में, खुराक के रक्षक-तत्वों की कमी लड़ाई के बाद तो प्रत्याशित थी, परन्तु अनाज (मुख्यतया गेहूं) में कमी की आशा १९४४ ई० तक नहीं की जाती थी। युरोप, पश्चिमी अफ्रीका, फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका, सुदूर पूर्व और भारत—इन देशों की गेहूँ की सब आवश्यकता मिलकर ३ करोड़ २० लाख टन के लगभग थी, जबकि अधिक अनाज वाले देश मिलाकर कुल २ करोड़ ४० लाख टन से अधिक निर्यात नहीं करे सकते थे। इस प्रकार संसार भर में गेहूं की कमी ८० लाख टन के करीब हो गई। चावल खाने वाले देशों में स्वयं चीन, जापान, फिलिपाइन्स और हिन्दुस्तान में चावल की पैदावार साधारण स्तर से १ करोड़ ५ लाख टन कम हो

गई । १९४६ मे आशा की जाती थी कि चावल के मुख्य उत्पादक और बाहर भेजने वाले देश बर्मा, स्याम और हिन्दचीन, ५९ लाख टन की जरूरत के मुकाबले में २४ लाख टन चावल विदेशों को भेज सकेंगे। संसार भर में इसी प्रकार चावल की कमी का अनुमान (सन् १९४६ ई० में) ३१ लाख टन लगाया गया था।

१९४५ ई० में अनाज की पैदावार साधारण स्तर से यूरोप में ४७ फीसदी, हिन्दुस्तान में २५ फीसदी, दक्षिणी अफ्रीका में ४० फीसदी, और फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका मे ७० फीसदी कम थी।

दुनिया की इस खाद्य-स्थिति की रूपरेखा को ध्यान मे रखते हुए भारत में विदेशों से पर्याप्त मात्रा में अनाज पाने की बहुत आशा नहीं है। इस कमी का सामना तो हमें देश में अपने ही प्रयत्नों से करना है। जैसा कि राजेन्द्रबाबू ने केन्द्रीय धारासभा के सामने भाषण देते हुए कहा था कि हम कम खुराक का दुख सहने के आदी हो चुके हैं। शायद सदा से ही हम भूखे रहने की आहार-मात्रा पर निर्वाह करते आये हैं। आहार-विज्ञान के अनुसार १००० उष्णता का अर्थ धीरे-धीरे घुलकर भूखे मरना होता है । सिर्फ जीने भर के लिए कम से कम १५०० उष्णता चाहिए, पर हमें तो मौत के रास्ते की ओर धकेलने वाला आहार ही प्राप्त हो रहा है। इस सम्बन्ध में अमरीका के एक फौजी अफसर ने व्याख्या की है कि ७०० उष्णता उस मनुष्य को जिन्दा रखने के लिए काफी है जो बिस्तरे मे गर्म वस्त्र आदि ओढ़े पड़ा रहे, १००० उष्णता प्राप्त करके वह कमरे में कुछ कुछ घूम फिर सकता है. १३०० उष्णता प्राप्त करके उससे कुछ थोड़ा-बहुत काम करने की भी आशा की जा सकती है। पर १५०० से उष्णता के कम होने पर शरीर अपनी ही चर्बी मांस के भोजन पर जीवित रहता है। एक अंग्रेज अर्थ शास्त्री के अनुसार १००० के लगभग उष्णता सिर्फ इसलिए काफी है कि न तो वह हमें मरने ही दे और न बहुत दिनों तक जीने ही दे। हिंदुस्तान की खाद्य-स्थिति की गम्भीरता का, जब कि एक समूचे राष्ट्र

का अधिकांश भाग इसी स्तर पर जी रहा हो, अच्छी तरह अनुमान किया जा सकता है।

भारत की खाद्योत्पत्ति साधारण वर्षों में ६ करोड़ टन के लगभग होती है। इस उपज का एक बड़ा भाग किसानों को अपनी जरूरत पूरी करने के लिए चाहिए। नगरों के लिए, जहां खाद्य नियन्त्रण है, जरूरी अनाज किसानों की जरूरत पूरी होने के बाद ही मिल सकता है। इस अधिक अनाज को इकट्ठा करना कितना कठिन काम है, इसका अनुमान इस बात से लग सकेगा कि जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों में किसान थोड़ी बहुत खेती करता रहता है, सामूहिक कृषि या बड़े क्षेत्र पर खेती नहीं होती, जिससे एक साथ अधिक अनाज पा लेना आसान हो। अनाज की स्थिति के बारे में जरा भी भय होने पर किसान अपना अनाज नहीं बेचता। उधर हिंदुस्तान में खाद्य-नियन्त्रण की योजना से प्रभावित जन-संख्या जो १९४३ में २० लाख थी १९४६ में १५ करोड़ तक जा पहुँची। इतनी जनसंख्या की जरूरतों को पूरी करने के लिए यह जरूरी है कि किसान को अपनी आवश्यकता से ज्यादा अनाज को बेचने के लिए मजबूर किया जाय और उस अनाज को सिर्फ रसदबन्दी के लिए जिम्मेदार हुकूमत ही खरीद सके।

इस तरह लोगों को सिर्फ मौत के मुँह से बचाकर ही हमारी खुराक की समस्या नहीं सुलझती। जरूरत इस बात की है कि हम अनाज की ज्यादा पैदावार के लिए साधन जुटाएँ और उसके लिए खेती को वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न करें। इसके साथ ही उपजे हुए अनाज को गोदामों में भरने का कोई अच्छा ढंग निकाला जाना चाहिए। इस समय हिंदुस्तान में तीस लाख टन के लगभग अनाज हर साल गोदामों में ही नष्ट हो जाता है। किसान अनाज को बचाए रखने का अच्छा इन्तजाम नहीं कर सकता। इस काम का बोझ हुकूमत को स्थानीय साधनों द्वारा अपने हाथों में लेना चाहिए।

खुराक के इन्तजाम को ठीक तौर पर सुलझाये बिना हमें १९४२

के बंगाल-दुर्भिक्ष जैसी राष्ट्रीय विपत्तियों के लिए तैयार रहना चाहिये। हमने देखा है कि हमारे देश में न तो अनाज ही हमारे लिये आवश्यक मात्रा में पैदा किया जाता है, न आहार में रक्षक-तत्त्व ही प्रायः पाये जाते हैं। इस प्रकार दिन-रात लाखों करोड़ों मनुष्यों में जीवन-शक्ति घट रही है, जिनकी अवस्था ऐसी है कि खाद्य-स्थिति की जरा भी बदइन्तजामी से वह बेबस हो बेशुमार तादाद में मरने लगते हैं।

जहां अनाज की पैदाइश में वृद्धि होनी चाहिए वहां हिंदुस्तानियों के आहार में रक्षक-तत्त्वों के संयोजन के प्रयत्न भी होने चाहिएँ। अपनी निम्नतम खरीदने की ताकत की असलियत का ध्यान रखते हुए इस विषय में यह आशा करनी कि साधारण लोग दूध, घी, सब्जियां, फल और मांस-मछली अण्डे आदि का अनाज के साथ प्रयोग कर सकेंगे, अपने को धोखा देना है। यह चीजें अधिक आमदनी होने पर ही मिल सकती हैं। इन रक्षक-तत्त्वों को जुटाने के लिए हिंदुस्तानी आर्थिक व्यवस्था का नये सिरे से निर्माण करना होगा। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद अपनी एक ऐसी शासन-प्रणाली स्थापित करके, जिसके हित पूँजीवादी न हों, और जो अपनी शक्ति हिंदुस्तान के साधारण नागरिकों से प्राप्त करे, इस दशा में कुछ किया जा सकता है।

हमें इस विषय की कठिनाइयों को समझ लेना चाहिए। संसार के लगभग ७० करोड़ जानवरों में से २० करोड़ पशु भारत में हैं जिनमें दूध देने वाले केवल ६ करोड़ पशु हैं। परन्तु इन पशुओं से प्राप्य दूध की मात्रा (पौने चार करोड़ पौंड) बहुत ही कम है। हिन्दुस्तान की एक औसत गाय हर रोज १.५ पौंड दूध (और भैंस ३.२ पौण्ड दूध) देती है जब कि कैनाडा की गाय ६ पौण्ड, न्यूजीलैण्ड की १७.९ पौण्ड और हालैण्ड की २०.९ पौण्ड दूध देती है। संसार के उन २८.९ फीसदी जानवरों में से, जो भारत में हैं, हम संसार की दूध उत्पत्ति का केवल १२ फीसदी ही पाते हैं। (इसके विपरीत यह ध्यान रखा जाय कि

औसत हिंदुस्तानी गाय और भैंस के दूध मे चिकनाहट पच्छिमी गौओं और भैंसों के दूध से क्रमश. २५ से ५० और १०० फीसदी अधिक होती है)। हमारे देश के पशुओ से जितना दूध पैदा किया जाता है जर्मनी में उतना २ करोड ५० लाख पशुओं से प्राप्त कर लिया जाता है । इस स्थिति के सुधार के लिए पशुओ की नस्ल सुधारना जरूरी है । उनके रहने का स्थान स्वच्छ और हवादार हो और खाने पीने के लिए अधिक चारा और खल आदि का इन्तजाम होना चाहिए । हमने देखा है, हमारे देश में चारे के लिए खेती किये गये रकबे का अनुपात बढ़ रहा है, पर यह चारा केवल उन पशुओं के काम न आकर जो कि हमें लाभदायक हैं, उनके काम मे भी आता है जो निकम्मे और व्यर्थ हैं । इस तरह व्यवस्था न होने से हमे सबसे बढ़िया रक्षक-तत्त्व-मय आहार—दूध—के बिना रहना पडता है ।

संयुक्त राष्ट्रों के आहार-सम्मेलन ने इस बात की व्यवस्था की थी कि प्रतिदिन हर व्यक्ति को २१ औंस दूध मिलना चाहिए । इसके विपरीत भारत मे फी आदमी को केवल ५ औंस (यानी १२॥ तोला) दूध प्राप्त होता है। कैनाडा में प्रति व्यक्ति को ६० औंस, आस्ट्रेलिया में ४५ औंस, ब्रिटेन में ४२ औंस, अमरीका में ३६ औंस और युद्ध से पहले जर्मनी में प्रति व्यक्ति को ३५ औंस दूध मिलता था ।

इसके अलावा दूध से बनने वाले खाद्यो—पनीर, दही, घी, मक्खन की कमी भी दूध की इसी कमी के कारण है । दूध से बने घी और मक्खन के स्थान पर हमारे देश में वानस्पतिक घी की बनावट और खपत बढ़ रही है । जैसा कि हम देख चुके हैं इस वानस्पतिक घी में विटामिन 'ए' और 'डी' दोनों नहीं होते । यह घी कभी भी शुद्ध घी का स्थान नहीं ले सकता ।

इसी तरह गुड़ और कुदरती मीठे की जगह देश में चीनी का इस्तेमाल, जो आज केवल एक रासायनिक पदार्थ रह गई है, आम हो गया है । गन्ने के रस अथवा गुड़ में कैल्शियम(चूने)और लोहे की कुछ

थोड़ी मात्रा रहती है जो चीनी में नहीं होती। चीनी के निर्माण में "पहले गंधक का तेजाब मिलाया जाता है, फिर चूने के पानी से उस तेजाब को निकाला जाता है, इसके बाद घंटों तक उबाला जाता है। ....यह साफ सफेद शक्कर क्षार-विहीन तो होती ही है साथ ही यह खाई भी बहुत जाती है। इससे खाने के लिए भूख भी कम हो जाती है......।" जर्मन रसायन-शास्त्री बुनगे ने इस सन्बन्ध में कहा है कि "शुद्ध कुदरती भोजन की जगह शक्कर जैसी केवल बनावटी रासायनिक चीजों के इस्तेमाल से बहुत हानि पहुँचने का भय है।...इस से कैलशियम, फौलाद, और जरूरी खनिज पदार्थ नहीं मिल सकेंगे।"

इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान में मछली पकड़ने की, अण्डे पैदा करने की और गोश्त हासिल करने की भी वैज्ञानिक सुविधाएँ नहीं हैं। विदेशों में समुद्र से मछली पकड़ने के लिए विशेष प्रकार के जहाजों को काम में लाते हैं। मछली और मांस को रखने के लिए बिजली से ठण्डे रहने वाले गोदाम बनाए गए है। हमारे देश मे वह दिन बहुत दूर हैं जब यह सब कुछ सुलभ हो सकेगा।

सब्जियों और फलों की कृषि का क्षेत्र भारत में बहुत ही कम है। परन्तु जब पेट भरने के लिए पहले अनाज ही न मिल सकेगा तो फल उत्पन्न करने की बात कौन सोचे ?

संयुक्त राष्ट्रों के आहार और कृषि-सम्मेलन ने आदर्श आहार का परिमाण इस प्रकार निश्चित किया है :

अनाज (गेहूं, चावल आदि)	१० औंस
सब्जियाँ (जड़ की)	८.०
सब्जियाँ (हरी, पत्तेदार और दूसरी)	८.४
फल	५.०
चिकनाहट (चर्बी, घी, तेल)	२.६
दूध	२१.०

खाँड	१.५
मांस, मछली और अण्डे	५.०
जोड़ =	६१.५
५ फीसदी नष्ट होने वाले भाग को कम करें	३.०
बाकी =	५८.५

यह आदर्श हिन्दुस्तान में हम कब तक पूरा कर सकेंगे ? इस समय औसत हिन्दुस्तानी सिर्फ ११ औंस अनाज और कुछ दालों तथा तेल और सब्जियों की बहुत-थोड़ी मात्रा पर निर्वाह कर रहा है । इस योग्य हम कब होंगे कि शेष आदर्श खुराक भी हिन्दुस्तानियों के लिए जुटा सकें ? देश को जो असन्तुलित आहार मिल रहा है, उसके सभी ख़ास परिणाम हिन्दुस्तान में प्रत्यक्ष हैं। आहार के औचित्य अथवा अनौचित्य का पता तो आखिर में आहार के स्वास्थ्य पर असर से ही चल सकता है। असन्तुलित आहार का सब से बड़ा सङ्केत क्षयरोग का आधिक्य है। इसके अतिरिक्त रिकेट्स (बच्चों की हड्डियाँ टेढ़ी हो जाना), स्कर्वी (त्वचा का रोग) और सब से मुख्य तो शैशवावस्था में ही बच्चों की मौत के अनुपात का अधिक होना है । हिन्दुस्तान में यह 'निराहार के रोग' आम हैं और हमने देखा है कि बच्चों की शैशव में मृत्यु भी बहुत अधिक होती है ।

भारत के आहार का ज्यादा हिस्सा खेती की उपज से ही प्राप्त होता है जब कि दूसरे देश संकट-काल में मांसादि और मांसज आहार दूध, दही आदि भोजनों का व्यवहार भी करते हैं। जो देश जितने समृद्धि-शाली हैं वह खेती की उपज पर उतना कम निर्भर होते हैं। अमरीका और उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के देशों में ४० फीसदी के लगभग उष्णता मांसज भोजनों से प्राप्त की जाती है। उन निर्धन देशों में, जहां खेती की उपज पर अधिक निर्भरता है, बारिश न होने

और बाढ़ आदि से प्रायः अकाल और दुर्भिक्ष पड़ते रहते हैं। इसलिए आवश्यक है कि कृषि की उपज पर निर्भरता घटाने के लिए दूध, पनीर, दही, घी, मक्खन, मांस, अण्डे आदि प्राप्त करने के लिए हम अपने देश के जानवरों की उन्नति करें।

: ७ :

विश्व-व्यापी संकट

भारत के आधुनिक खाद्य संकट को आज के विश्वव्यापी संकट की पृष्ठभूमि में देखना उचित है। द्वितीय महायुद्ध ने संसार के कितने ही राष्ट्रों की आर्थिक व्यवस्था में बहुत उथल-पुथल कर दी। किसानों की एक बड़ी संख्या फौज में भर्ती हो गई और बढ़ती हुई फौजों ने खड़े खेतों को नष्ट कर दिया। लड़ाई की समाप्ति तक भारत के बंगाल-दुर्भिक्ष के अलावा इतने बड़े परिमाण में और कहीं अनाज की तकलीफ नहीं देखी गई। मित्रराष्ट्र युद्ध के बाद रक्षक तत्त्वों की कमी का अनुमान लगाये बैठे थे और भिन्न २ अनाज निर्यात् करने वाले देशों के गोदामों में अनाज के भरे भण्डारों को देख-देख इस ओर से बेफिक्र थे। पर अमरीका का अनाज-भण्डार १६४२–४३ ई० और १६४३–४४ ई० के वर्षों में अमरीका द्वारा अधिक अनाज खपत में, पशुओं और मुर्गियों को चारे के रूप में तथा देश की रासायनिक आवश्यकताओं में (इससे शराब, रासायनिक रबड आदि बनाई जा रही थी) तेज़ी से खर्च हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए अर्जेण्टाइना ने अनाज-भण्डार को बाहर भेजने के बदले पशुओं को खिलाना ही ठीक समझा। इधर कुदरत के रोष से भिन्न २ देशों में खेती की उपज व्यर्थ होने लगी। यूरोप, फ्रान्सीसी उत्तरी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, न्यूज़ीलैण्ड और हिन्दुस्तान में बारिश न होने से फसलें नष्ट हो गईं।

लड़ाई से पहले जो लोग अपनी गेहूँ की जरूरतों को स्वयं ही पूरी नहीं कर सकते थे उनके अनाज की सब आयात १ करोड़ ३० लाख टन थी। अब लड़ाई से पैदा परिस्थिति और अभौतिक आपदाओं के

कारण आयात की इस मात्रा में बहुत वृद्धि आवश्यक हो गयी। लड़ाई के पहले यूरोप केवल ४० लाख टन गेहूं विदेशों से मंगाया करता था, अब (१९४५-४६ ई० में) उसकी आवश्यकता १ करोड़ ५६ लाख टन गेहूं की थी। एशिया और अफ्रीका युद्ध से पहले २४ लाख टन गेहूँ मंगाया करते थे, अब उनकी माग १ करोड़ ७ लाख टन तक पहुँच गई। इस प्रकार के जरूरतमन्द बाकी देशों को मिलाकर गेहूँ की आयात की समस्त आवश्यकता का जोड़ ३ करोड़ २० लाख टन था, जो कि ७-८ वर्ष पहले १ करोड़ २० लाख टन ही हुआ करता था। इसके विपरीत संसार के अधिक अनाज वाले देश (खासकर अमरीका और कैनाडा तथा कुछ हद तक आस्ट्रेलिया और अर्जेंयटाइना) सिर्फ २ करोड़ ४० लाख टन गेहूं ही दे सकते थे। इस तरह दुनिया की गेंहू की स्थिति में ८० लाख टन का घाटा पड़ गया।

रूस को छोड़कर बाकी यूरोप में खास अनाजों की पैदावार जब कि युद्ध से पूर्व औसतन ५ करोड़ ६० लाख टन थी, १९४४ ई० में ४ करोड़ ६० लाख टन और १९४५ ई० में ३ करोड़ १० लाख टन रह गई। साधारण स्तर से आवश्यकता को एक चौथाई से कम करके भी १ करोड़ ५६ लाख टन गेहूं जरूर चाहिए था। इसी तरह हिन्दुस्तान, चीन, फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका और बर्मा से कुछ दूसरे देशों की आवश्यकताओं का योग, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, १ करोड़ ७ लाख टन हो गया। (फ्रांसीसी उत्तरी अफ्रीका में अनाज की पैदावार ३८ लाख से ११ लाख टन रह गई, हिन्दुस्तान में ७० लाख टन की कमी हुई)। गेहूं के अलावा चावलों की मांग और प्राप्ति में भी इसी प्रकार विषमता उत्पन्न हो गई। चावल के दो मुख्य निर्यातक बर्मा और स्याम में चावल की उपज ८४ लाख टन की मांग के मुकाबले में सिर्फ ४१ लाख टन की हुई। इसके विपरीत कितने ही देशों में अनाज की उत्पत्ति बढ़ी भी है। कैनाडा, अमरीका, अर्जेंयटाइना और आस्ट्रेलिया में गेहूं की कृषि के रकबों में

कमी तो हुई पर उपज में वृद्धि हो गई। लीग आफ नेशन्स के एक प्रकाशन (फूड राशनिंग एण्ड सप्लाईः १९४३-४४)में इसका हिसाब इस प्रकार दिया गया है :—

(रकबे में ००,००० एकड़ जोड़ लिए जायं तथा उपज में भी ००,००० बुशल जोड़ें)

साल	गेहूं की खेती का रकबा	उपज
१९३७-३८	१४,१०	१,४४,६०
१९३८-३९	१४,००	१,८१,४०
१९३९-४०	१२,१०	१,६०,३०
१९४०-४१	१२,००	१,७३,४०
१९४१-४२	११,४०	१,६४,६०
१९४२ ४३	१०,००	१,९२,१०

इस उपज की अधिकता को संसार के कमी के क्षेत्रों के लिए कितने ही कारणों से उपयोग में नही लाया जा सका। यह कारण, राजनीतिक कारणों के अलावा आमदरफ्त की कठिनाइयां, मुद्राओं की अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन की कठिनाइयां तथा इन देशों की अपनी बढ़ी हुई खपत आदि भी थे।

अलग-अलग देशों में इस समय खपत के स्तर में परिवर्तन (अमरीका को छोड़कर सभी स्थानों में अवनति) निम्नलिखित आंकड़ों से प्रकट हो सकेगा (ह्वाइट पेपर ऑन फूड से उद्धृत)।

हर व्यक्ति द्वारा पाई जा रही उष्णता की मात्रा

देश	प्राप्त औसत उष्णता	युद्ध के पहले से अब फीसदी
अमरीका	३१२१	१०२
कैनाडा	३००१	१००
आस्ट्रेलिया	२९०१	९७
डेन्मार्क, स्वीडन	२८९०-२९००	९०-९५
इंगलैंड	२८५०	९५

फ्रॉस, बेलजियम, हालेण्ड, नार्वे	२३००-२५००	७५-८०
यूनान, यूगोस्लो-विया, इटली तथा चैकोस्लोवाकिया	१८००-२२००	७०-७५
जर्मनी(चारों विभाग) और आस्ट्रिया	१६००-१८००	५०-६०

(१) यह संख्याएं १९४५ ई० की औसत हैं। अमरीका में नियं-त्रण के हट जाने के कारण इस समय औसत अमरीकन 'आहार द्वारा प्राप्त हो रही उष्णता की मात्रा कहीं अधिक है।

हिन्दुस्तान में इन सब देशों से कम अर्थात् १०००-१२०० उष्णता मिल रही है।

जो देश अपनी जरूरत से ज्यादा अनाज पैदा करते हैं, नीचे लिखे आँकड़ों से उनकी खाद्यस्थिति और अनाज की प्राप्य मात्रा का अनुमान किया जा सकेगा :—

अमरीका, कैनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेण्टाइना की खाद्य स्थिति

(००,००० टन जोड़ दें)

प्राप्य अनाज देशों की अपनी खपत

साल गतउपज शेष जोड़ खाद्य बीज पशुओं को उद्योग धंधों में जोड़ नि० शे०

लड़ाई से पहले की औसत(३४-३५ से ३८-३९) ११६ ३६६ ४८८ १६६ ४२ ४५ × २९३ ११७ ११८

३९-४०	१८२	४२९	६११	१६८	३९	५२	×	२५९	१३३	२१९
४०-४१	२१९	४६४	६८३	१६८	३७	५२	×	२५७	१२१	३०५
४१-४२	३०५	४४२	७४७	१७३	३२	५५	×	२६०	१०२	३८५
४२-४३	३८५	५१५	९००	१८६	३१	१४४	१७	३४८		९७ ४५५
४३-४४	४५५	३९८	८५३	१८९	३५	१८१	३१	४३६	११६	३०१
४४-४५	३०१	४५३	७६४	१९३	३७	१३०	२७	३८७	१५३	२२४
४५-४६	२२४	४६१	६८५	१८४	४२	१०५	६	३३७	२३७	१११

(आनुमानिक)

(क) कैनाडा के अनाज-भण्डार का अनुमान लगाये जाने की तारीख जुदा है।

प्रत्यक्ष है कि लड़ाई के दिनों में भी इन देशों की अनाज की उपज बहुत अच्छी रही। १९४२-४३ ई० से अनाज भण्डारों में कमी होने लगी, क्योंकि अनाज की काफी मिकदार पालतू मुर्गियों और जानवरों को खिलाई जाने लगी। अनाज-भण्डार में जहां १९४२-४३ ई० में ४ करोड़ ५५ लाख टन थे, वहाँ ४३-४४ ई० में ३ करोड़ १ लाख और ४४-४५ ई० में २ करोड़ २४ लाख टन रह गया। निर्यात के लिए अनाज की जो मात्रा प्राप्त थी वह फिर भी काफी थी, पर इतनी नहीं कि संसार की मांग पूरी हो सके। अब भण्डार भी बहुत खाली हो गया है। इन देशों में गौओं, सूअरों आदि को जो १ करोड़ ५ लाख टन अनाज खिलाया जा रहा है उसमें कमी की जाने पर ही दूसरे देशों के भूखों को अनाज मिल सकेगा।

हमारी खाद्य-स्थिति से मुर्गी और पशुओं का इतना गहरा सम्बन्ध है इसलिए उनके विषय में भी ध्यान करना उचित है। इंगलैंड और शेष यूरोप में पशुओं की संख्या में कमी हो गई है। उत्तरी अमरीका में इनकी संख्या बहुत बढ़ गई है—सूअर ४० फीसदी, मुर्गी आदि ३३ फीसदी, दूसरे पशु २० फीसदी बढ़ गये हैं। इन्हें खिलाने के लिए जरूरी अनुपात में अनाज की भी ४० फीसदी वृद्धि हुई है। अमरीका

में अनाज की जो मात्रा उन्हे दी जा रही है उसके सिर्फ एक चौथाई भाग से इंगलैंड और यूरोप, अमरीका की मुर्गियों और पशुओं से कुछ ही कम संख्या का पालन-पोषण करते हैं। अमरीका आदि में जानवरों को इतना अनाज खिलाने के कारण माँस के भाव बढ़े हुए हैं। इंगलैंड और यूरोप में युद्ध काल में मांस की भी बहुत कमी हो गई, जब कि उत्तरी और दक्षिणी अमरीका में इसकी प्राप्य मात्रा बढ़ गई। इसी प्रकार दुनिया की चिकनाहट प्राप्ति की स्थिति भी लड़ाई के कारण बिगड़ी हुई है। १९४६ ई० में लड़ाई के समय से पहले के वर्षों से आधी से कुछ ही अधिक चिकनाहट की मात्रा बाहर भेजी गई होगी। ऐसे ही खाँड की उपज और आयात (जावा और फिलिपाइन्स के जापान के अधीन हो जाने से तथा ईख, चुकन्दर आदि की खेती के लिए उचित खाद न मिलने से) लड़ाई के दिनों में कमी हो गई थी। अब इस स्थिति में शीघ्र ही सुधार हो रहा है।

अनाज की स्थिति में सुधार लाने के लिए संसार के सभी देश कोशिश कर रहे हैं। इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किये जा रहे हैं और खाद्य के आयात और निर्यात की रोकथाम की योजनाएँ तैयार की जा रही हैं। अमरीका के विशेष दूतों ने संसार भर के देशों में घूम २ कर खाद्य स्थिति से परिचय प्राप्त करने की कोशिश की है। इंगलैण्ड में अनाज से आटे की पिसाई ८१ फीसदी तक बढ़ा दी गई है और अनाज भण्डार में बहुत कमी कर दी गई है। मुर्गी और पशुओं को खिलाए जाने वाले अनाज पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। चारे की जगह खुराक के अनाजों की खेती पर जोर दिया जा रहा है। अनाज के उपयोग को उद्योग-धन्धों को रासायनिक आवश्यकताओं में बहुत कम किया जा रहा है (वहाँ अब लड़ाई के पहले से केवल ४२ फीसदी शराब तैयार की जा रही है)। अमरीका ने भी आटे की पिसाई ८० फीसदी कर दी है। आस्ट्रेलिया अनाज की पैदाइश की वृद्धि के प्रयत्नों में जुटा है। कैनेडा ने शराब के लिए प्रयुक्त होने वाले

अनाज में १० फीसदी कमी कर दी है। इसी प्रकार चावल की कमी पूरी करने के भी प्रयत्न हो रहे हैं, पर यह कमी शीघ्र ही सुधर सकेगी इसकी बहुत आशा नहीं है।

खाने के लिए लोगों को जो खुराक मिल रही है, उसके बारे में ७० देशों के लड़ाई के पहले के आहार की खोज कर के सर जान आर की प्रधानता में आहार और कृषि संस्था के कोपनहेगन के सम्मेलन ने सुझाया कि आहार के भिन्न तत्वों में नीचे लिखे रूप से वृद्धि आवश्यक है:

अनाज २१ फीसदी, जड़ की सब्जियां २७ फीसदी, खाँड १२ फीसदी, चिकनाहट ३४ फीसदी, दालें ८० फीसदी, फल और हरी सब्जियाँ १६३ फीसदी, मांस ४६ फीसदी, और दूध १०० फीसदी, अर्थात् दुनिया में इन वस्तुओं की इस अनुपात में कमी है। अनाज की प्रायः उन्हीं देशों में कमी है जो खुद ही अपने लिए अनाज पैदा किया करते थे। अमरीका में अनुमान लगाया गया है कि एक तिहाई जन संख्या अच्छी तन्दुरुस्ती के लिए ज़रूरी आहार से घटिया आहार पा रही है। अमरीका में मक्खन की उपज १९ फीसदी, फल और सब्जियों की उत्पत्ति ७९ फीसदी बढ़नी चाहिए ताकि सब को उचित आहार मिल सके। वैसे युद्ध के पहले से अब औसतन अमरीकन १४ फीसदी अधिक खुराक पा रहा है। इंगलैण्ड में २९ फीसदी मांस और ७० फीसदी मांसज भोजन-दूध, पनीर, मक्खन आदि तथा फल और सब्जियाँ अधिक पैदा होनी चाहिए। "भूख को स्वास्थ्य में परिवर्तन करने के लिए" समस्त संसार में खेती की उत्पत्ति दुगुनी हो जानी चाहिए।

संसार में अनाज का न्यायोचित बँटवारा करने वाली अब तक कोई शक्तिशाली संस्था नहीं बन सकी है। बँटवारे के इस मानवीय कर्त्तव्य में भी जरूरत का ध्यान न करके राजनीति का हस्तक्षेप अधिकतर हो जाता है। सभी प्रमुख देश उन्हीं देशों को अनाज भेजना चाहते हैं और भेजते हैं जहाँ कि उनका प्रभाव बढ़ सके या जम सके। रूस ने

जब हिन्दुस्तान के लिए सहायता मांगी गई तो उत्तर मिला कि यूक्रेन में पानी न बरसने के कारण अनाज की पैदावार में बहुत कमी हो जाने का भय है। फिर भी रूस ने लड़ाई के बाद फ्रान्स को ५ लाख टन, चेकोस्लावाकिया को ६० हजार टन, पोलेण्ड को ११ हजार टन गेहूं दिया, इसके अतिरिक्त फिनलैण्ड और रूमानिया को भी काफी सहायता दी, क्योंकि इन्हीं देशों से उसको कोई राजनीतिक लाभ हो सकता था। मित्र राष्ट्रों की रिलीफ़ एण्ड रिहैबिलिटेशन ऐसो-सिएशन की असफलता और समाप्ति का कारण भी राजनीतिक ही था। इंगलैण्ड और अमरीका उन देशों को सहायता नहीं पहुँचाना चाहते थे जो रूस के प्रभाव में थे चाहे उनकी ज़रूरतें कितनी ही सच्ची क्यों न थीं, और यू. एन. आर. आर. ए. का मुख्य कार्य क्षेत्र ज्यादातर इन्हीं बालकन देशों में सीमित था। इसके अलावा खाद्य के बँटवारे में जहाजों की कमी भी एक अड़चन साबित हुई।

खाद्य का यह संकट थोड़े समय के लिए है या देर तक रहेगा, इस पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में अनाज की किसी प्रकार की कमी की आशंका नहीं है। दैवकोप न हो तो अनाज अधिक पैदा होना सम्भव है। अनाज ज्यादा पैदा करने वाले मुख्य देशों में १९३८ ई० से उस क्षेत्र में जहां गेहूं बोते थे १५ फीसदी की कमी हो गई है, पर इसके विपरीत फी एकड़ की उपज बढ़ गई है जैसा कि पीछे दिखाया जा चुका है। अमरीका में १९३५–३९ ई० की खेती की औसत उपज से १९४४ ई० की उपज कृषि पर लगे मज़दूरों के २५ फीसदी कम हो जाने पर भी ३३ फीसदी बढ़ गई है। हर आदमी के पीछे उपज में ७५ फीसदी की वृद्धि हो गई है, यद्यपि इस समय में कृषि सम्बन्धी मशीनरी का निर्माण बहुत कम हो गया था। अमरीका के कृषि विभाग की सूचना के अनुसार जरूरत होने पर अमरीका अपनी १९४३ की उपज को दस वर्षों में २¼ गुना बढ़ा सकता है। परन्तु अनाज की अधिकता इस बात पर

निर्भर रहेगी कि कृषि वैज्ञानिक और आधुनिक साधनों से हो तथा कृषक को अपनी उपज के विक्रय से उचित लाभ मिलने का आश्वासन हो। १६२८ ई० और १६३८ ई० के बीच के दस वर्षों में से ६ वर्षों में दुनिया के बाज़ार में गेहूं के मूल्य में ७० फीसदी घट-बढ़ हुई है। ऐसी स्थिति न पैदा होने का आश्वासन पाकर ही किसान अनाज की खेती-बाड़ी में व्यस्त रह सकता है। पर जैसा कि स्पष्ट है, किसी खास कुदरती विपत्ति के न आने पर और किसानों में अनाज पैदा करने में ही पर्याप्त आकर्षण उत्पन्न कर के अनाज की कमी की सम्भावना दूर की जा सकती है।

इसके विपरीत वह लोग हैं जिनका कहना है कि "अनाज की कमी का सवाल थोड़े दिनों का नहीं, देर तक टिकने वाला है।" यद्यपि अनाज की पैदावार वैज्ञानिक साधनों से बढ़ गई है, पर इसके मुकाबले में संसार की जन-संख्या भी बढ़ गई है। इसमें १६३६ ई० से १६४६ ई० तक १० करोड़ के करीब वृद्धि हो चुकी है, जिसमें ४ करोड़ के लगभग तो केवल सिर्फ हिन्दुस्तान में ही हुई है। जैसे २ लोगों का रहन-सहन का स्तर ऊँचा होता जायगा, खाद्य का खपत बढ़ती जायगी। खादों की उत्पत्ति और बीजों की कमी में शीघ्र सुधार नहीं किया जा सकता। दिखलाई यही देता है कि अभी कुछ वर्षों तक खाद्य-स्थिति में बहुत सुधार नहीं हो सकेगा लेकिन अनाज की स्थिति में खास बदइन्तजामी एक मनमानी करने वाले और किसी केन्द्रीय रोक-थाम से बरी संसार के आर्थिक गड़बड़झाले से ही उत्पन्न होती है। अभी बहुत से राष्ट्र इन मामलों में अपनी राजसत्ता का कुछ अंश मानव की भलाई के लिए किसी केन्द्रीय सस्था को सौंपने को तैयार नहीं हैं।

कोशिश होनी चाहिए कि दूसरे महायुद्ध से 'ग्लट' (विषम आधिक्य) की स्थिति उत्पन्न हो जाया करती थी वह न उत्पन्न होने दी जाए, मतलब यह कि कहीं तो भूख से लोग प्राण छोड़ रहे हों तो कहीं अनाज को ईंधन के काम में लाया जाय, यह न हो। सर-जान